શ્રી યશોવિજયજી
જૈન ગ્રંથમાળા
દાદાસાહેબ, ભાવનગર.
ફોન : ૦૨૭૮-૨૪૨૫૩૨૨
૩૦૦૪૮૪૬

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सामायिक लेख संग्रह

लेखक :—

मुनिराज विद्या विजय जी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

श्री विजय धर्म सूरि ग्रन्थमाला पुस्तक ६६

1089

सामयिक लेख संग्रह

लेखक:—

मुनिराज विद्या विजयजी

श्री विजय धर्म सूरि ग्रन्थमाला

शिवपुरी (मध्य भारत)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रकाशक
सत्यनारायण पंड्या
मंत्री, विजय धर्म सूरि-ग्रन्थमाला
शिवपुरी मध्य-भारत

प्रथमावृत्ति ५००

सर्वाधिकार सुरक्षित है

जनवरी १९५१
मूल्य १॥-)

मुद्रक—
द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'
स्वाधीन प्रेस, झांसी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दो शब्द

सारे संसार में दुःख का दावानल प्रज्वलित हो उठा है। जिसकी संस्कृति में आध्यात्मिक भावना का प्राधान्य रहा है, वह भारतवर्ष में भी इससे बचा नहीं है। कारण स्पष्ट है, भारतवर्ष में भी जड़वाद ने अपना आतंक जमा लिया है। क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ, असत्य, अनीत और तज्जन्य हिंसक मनोवृत्ति सर्वव्यापी बन गई है। उसकी प्रतिक्रिया का फल आज भारतवर्ष भी भोग रहा है। आत्मिक बुराइयों का फल अच्छा कभी नहीं हो सकता। जो लोग दूसरों का ईर्ष्या द्वेष करके राजी होते हैं उनका राजीपन तब तक है :—

"जब तक पूरबल पुण्य की पूंजी नहीं करार।"

पुण्य की पूंजी खत्म होने पर, वह दरदर का भिखारी बनता है। रोग-शोक-संताप से आक्रान्त हो जाता है, सारे संसार के लिए वह दयापात्र बन जाता है। दूसरों को दुखी करके स्वयं सुखी कोई हो नहीं सकता। सूखे पत्ते को गिरते हुए देख कर, हंसने वाली कांपलें भूल जाती हैं कि कल हम भी सूखेंगे और गिरेंगे ही। कभी-कभी तो पाप का फल तत्काल देखने में आता है। सत्ता के या श्रीमंताई के मद में निर्दोष को सताने वाले के ऊपर एकदम आफत आ जाती है, तब दुनियां को यह कहने का मौका मिल जाता है कि "देखा, कुदरत किसी को नहीं छोड़ती।" इसी लिए तो शास्त्रकारों ने कहा है:—

अत्युग्रपुण्य पापानामिहैव लभ्यते फलम्॥

कुदरत को या ईश्वर के इन नियमों को जानते हुए, समझते हुए और देखते हुए भी, मनुष्य की आत्मा पर मोह का ऐसा पर्दा गिरा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दुख है कि वह अपने जीवन को शुद्ध-पवित्र मार्ग की ओर नहीं ले जाता। विष्ठा का कीड़ा, जैसे विष्ठा में ही आनन्द मानता है, उसी प्रकार दूसरों की बुराइयां निन्दा, द्वेष, ईर्ष्या और निर्दोषों को सताने का स्वभाव वाले उसी में आनन्द मानते रहते हैं।

संसार के सारे क्षेत्रों में प्रायः यही पापाचार, भ्रष्टाचार और पाशविकता का नंगा नृत्य हो रहा है। और साथ ही साथ इसका फल भी भोगा जा रहा है। आश्चर्य तो यह है कि जो अपने को सज्जन बता रहे हैं, वे ही दुर्जन का काम करते देखे जाते हैं। जो रक्षक हैं, वे भक्षक बने बैठे हैं। अधिक दुखः का विषय तो यह है कि बड़े-बड़े जवाबदार लोग स्वयं ऐसी गुण्डेशाही को प्रोत्साहन देते हैं।

संसार की ऐसी घटनाओं को देखकर कभी-कभी यह साधु हृदय बहुत ही द्रवित होता है। और उस समय जो-जो विचारधारा प्रवाहित होती है उसी को लिपिबद्ध कर लेता हूँ और ऐसे लिपिबद्ध किए हुए तथा 'मध्य भारत सन्देश, नव प्रभात, जैन जगत, प्रभात, विक्रम' आदि प्रसिद्ध पत्रों में प्रकाशित हुए मेरे लेखों का संग्रह—यह है मेरा 'सामयिक लेख संग्रह' इसके अतिरिक्त इन लेखों के विषय में मुझे क्या कहना है? यही कि जनता इसको पढ़े और वास्तविकता को समझे यही संकेत।

शिवमस्तु सर्वजगतः।

शिवपुरी (मध्य भारत)
१ मार्च १९५३
धर्म सं०-३१

—विद्या विजय

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विषय-सूची

१—शिक्षण और चरित्र-निर्माण	....	१
२—भगवान महावीर का साम्यवाद	... ...	२४
३—मच्छी के उत्पादन द्वारा मानव जीवन की रक्षा	...	३२
४—आधुनिक शिक्षा में सिनेमा का स्थान	...	३६
५—मानव और मांसाहार	... ...	४१
६—सच्चे सेवकों का सम्मान	... ...	४७
७—हमारी शिक्षण संस्थाएँ	... ...	५३
८—सर्व व्यापी उच्छृंखलता	....	६५
९—भारतीय संस्कृति के कुछ प्रतीक	... ...	७३
१०—अपराधों की रोकथाम	... ...	७६
११—बुद्धिजीवी और श्रमजीवी	... ...	८४
१२—स्वतन्त्रता और सुतन्त्रता	....	९०
१३—प्रकाशित पुस्तकें	....	९६
१४—अशासकीय शिक्षण संस्थायें	...	१०३
१५—हिंसा का परिणाम	...	११३

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शिक्षण और चरित्र-निर्माण

मानव जाति के साथ शिक्षण का सम्बन्ध हमेशा से चला आया है। कोई ऐसा समय नहीं था, जबकि मनुष्य को शिक्षण न दिया जाता हो। संसार परिवर्तनशील है, इसलिये शिक्षण की पठन-पाठन प्रणाली में, एवं पाठ्यक्रम तथा अन्यान्य साधनों में परिवर्तन अवश्य होता रहा है। किन्तु शिक्षण, यह तो अनिवार्य वस्तु बनी रही है। "आवश्यकता आविष्कार की जननी है"। जिस-जिस समय जिस चीज की आवश्यकता उत्पन्न होती है, उस समय उस चीज की उत्पत्ति अनायास हो ही जाती है। "कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती"। किसी भी देश में, किसी भी समाज में बल्कि किसी भी कुटुम्ब और व्यक्ति में भी, जो-जो प्रवृत्तियां होती हैं, वे सब सहेतुक ही हुआ करती हैं। शिक्षण, एक या दूसरी रीति से सभी देशों, समाजों और व्यक्तियों में हुआ, होता आया और हो रहा है। किन्तु जैसे उसके तरीकों में - प्रणालिकाओं में फर्क रहा है, उसी प्रकार उसके हेतुओं में भी।

शिक्षण का हेतु

भारतवर्ष आध्यात्मिक प्रधानता रखने वाला देश हमेशा से रहा है। ईश्वर, पुण्य, पाप आदि की भावना को सामने रख कर ही उसकी प्रत्येक-प्रत्येक प्रवृत्ति आज तक रही है। और यही उसकी संस्कृति है। व्यक्तिगत स्वार्थ, लोभ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आदि के कारण बुरा काम करते हुये भी, उसको बुरा समझना, एवं पाप समझना, यह भारत की संस्कृति का मुख्य लक्षण रहा है।

भारतीय शिक्षण के हेतु में भी आध्यात्मिकता की भावना ही प्रधान रही है। 'सा विद्या या विमुक्तये' 'ऋते ज्ञानात न मुक्तिः' ये उसी सिद्धान्त के प्रतीक हैं। वही विद्या, विद्या है जो मुक्ति के लिए साधन भूत हो' तथा 'ज्ञान -विद्या के बिना मुक्ति नहीं होती' यह दिखला रहा है कि शिक्षण में हमारा हेतु आत्म-कल्याण का था, ईश्वर के निकट पहुंचने का था और उसी हेतुके परिणाम-स्वरूप हमारे सामने यह कर्त्तव्य रक्खा गया था कि 'मातृदेवो भव,' 'पितृदेवो भव,' 'आचार्य देवो भव,' 'अतिथि-देवो भव,' 'धर्मं चर' 'सत्यम् वद' इत्यादि।

शिक्षण का क्षेत्र पवित्र क्यों ?

मानव को सच्चा मानव बनाने के लिये ही हमारा शिक्षण, शिक्षण का कार्य करता था। ऐहिक-सुख तो उसके अन्तर्गत था। वह अनायास ही मिल जाता था। भौतिक सुखों का लक्ष्य भारतीय-शिक्षण में नहीं था, फिर भी भारतीय प्रजा उन सुखों से वंचित भी नहीं रहती थी, क्योंकि आध्यात्मिकता-आत्मिक-शक्ति-एक ऐसी चीज है जिसके आगे कोई भी सिद्धि हस्तगत हुये बिना नहीं रहती, इसीलिए भारतवर्ष में शिक्षण को सबसे अधिक पवित्र क्षेत्र माना है।

विद्यागुरु का महत्व—

प्राचीन काल में विद्या, विद्यागुरु और विद्यार्थी, इस त्रिपुटी की एकता होती थी। विद्यार्थी विद्या के उपार्जन में विद्यागुरु को एक महत्व का स्थान मानता था। विद्या की प्राप्ति में विद्या-गुरु

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

की कृपा और आशीर्वाद को ही प्रधान कारण मानता था। और इसी कारण से उनके प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति रखता था। गुरु के गुण शिष्य में आना, यह आवश्यक था। गुरु की कृपा के सिवाय यह कैसे हो सकता है? यह भारतीय संस्कृति थी। यही कारण था कि 'गुरुकुल वास' आवश्यकीय समझा जाता था। उपनिषदों और जैनागमों में ऐसे 'गुरुकुलवास' का बहुत महत्त्व बताया गया है। "विद्या विनय से प्राप्त होती है" यह हमारे देश की श्रद्धा का एक प्रतीक रहा है। विनय-हीन विद्यार्थी की क्या दशा होती है, इसका सुन्दर चित्रण जैनों के उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम-अध्ययन में पाया जाता है। विद्यार्थियों के चारित्र-निर्माण की यही प्राथमिक भूमिका है। प्राचीन-शिक्षण-पद्धति में इसका प्राधान्य था।

प्राचीन शिक्षण संस्थाएँ

उपनिषद् और जैनागमों में प्राचीन शिक्षण-पद्धति का जो वर्णन पाया जाता है, उसमें गुरुकुल, अथवा आश्रमों का काफी वर्णन आता है। प्राचीनकाल में शिक्षण की जो संस्थायें प्रचलित थीं, उनमें मुख्य आश्रम थे। आठ वर्ष की उम्र से बालकों के शिक्षण और चरित्र-निर्माण का कार्य ऐसे ही आश्रमों में प्रारम्भ होता था। यद्यपि इतिहासों में विद्यापीठों का वर्णन भी आता है, जिनमें नालन्दा, मिथिला, बनारस, विजयनगर, वल्लभीपुर और तक्षशिला आदि स्थानों के विद्यापीठों का काफी उल्लेख मिलता है। वे विद्या-पीठ आज के विश्व-विद्यालयों के स्थान में थे। दस-दस हजार छात्रों का रहना, पन्द्रह सौ शिक्षकों का पढ़ाना, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक भौगोलिक आदि अनेक विषयों का उच्च-कोटि का ज्ञान कराना यह उन विद्यापीठों का कार्यक्षेत्र था। किन्तु चरित्र-निर्माण का

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कार्य,जो कि बाल्यावस्था से होना आवश्यक है, वह तो उन आश्रमों में ही होता था। इन आश्रमों की संख्या भारतवर्ष में सैकड़ों की नहीं, सहस्रों के परिमाण में थीं। इतिहासकारों का कथन है कि जब अङ्गरेजों ने बंगाल पर अपना अधिकार जमाया उस समय केवल बंगाल में अस्सी हजार (८०,०००) आश्रम थे। कहा जाता है कि प्रत्येक चारसौ (४००) मनुष्यों की बस्ती के ऊपर एक-एक आश्रम था। आज भी बंगाल के किसी किसी ग्राम में ऐसे आश्रम का नमूना मिलता है, जिसको 'बंगीय-भाषा' में "टोल" कहते हैं। ये आश्रम किस प्रकार से चलाये जाते थे, कौन चलाते थे, कहां तक विद्यार्थी रहते थे इत्यादि आवश्यकीय बातों का उल्लेख करना इसलिए जरूरी समझ रहा हूं कि पाठकों के ख्याल में यह बात आ जाय कि चरित्र-निर्माण के लिए कैसे वातावरण की आवश्यकता है।

प्राचीन आश्रम (गुरुकुल):—

प्राचीन समय के आश्रम, जिनको 'गुरुकुल' कहा जा सकता है, वे सादगी और पवित्र वातावरण के प्रतीक थे। न बड़े २ मकान थे, न फनीचर का ठाट था। सुन्दर वृक्ष-वाटिकाओं में बने हुए मिट्टी के सादे मकानों में, ये आश्रम चलते थे। गुरु शिष्यों का सम्बन्ध मानो कौटुम्बिक-सम्बन्ध था। आश्रमों को चलाने वाले गुरु भोग-विलासों में लिप्त, शृङ्गार के पुतले, व्यसनों से भरे हुए, सांसारिक वासनाओं में रहने वाले गृहस्थ नहीं थे। वे त्यागी, संयमी, जितेन्द्रिय, वानप्रस्थ अथवा विरक्त ऋषि थे। उत्तम संस्कार वाले, शुद्ध गृहस्थाश्रम का पालन करने वाले माता पिता, छः सात वर्षों तक अपने बच्चों में सुन्दर संस्कार डाल करके विद्याध्ययन के लिए ऐसे पवित्र वातावरण वाले आश्रमों में-गुरुकुलों में- रखते थे। कहा जाता है कि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अधिक से अधिक ४४ (चवालीस) और कम से कम २५ (पच्चीस) वर्ष तक इन आश्रमों में वे बालक रहते थे। यह वैज्ञानिक अनुभव सिद्ध-सत्य है कि वातावरण का प्रभाव मानव जीवन पर पड़े बिना नहीं रहता। सांसारिक वासनाओं से दूर रहने वाले, प्रकृति की गोद में क्रीड़ा करने वाले, त्यागी-संयमी-गुरुजन की सेवा में लगे रहने वाले, विचार, वाणी और आचरण एक ही प्रकार के रखने वाले गुरुओं का प्रतिदिन सदुपदेश श्रवण करने वाले, उनके पवित्र जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने वाले और वर्षों तक—यौवन की घोर घाटी से पार हो जाने तक—ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए एक ही गुरु के आदर्श को सामने रखकर, विद्याध्ययन के साथ अपना चरित्र-निर्माण करने वाले, उन भारतीय बालकों, युवकों और वीरों का कैसा चरित्र-निर्माण हुआ करता होगा, यह दिखलाने की आवश्यकता है क्या? ऐसे आश्रमों में शास्त्र-विद्या और शस्त्र-विद्या दोनों सिखलाई जाती थी। शास्त्र-विद्या, आत्मिकज्ञान के लिए होती थी और शस्त्र-विद्या रक्षण के लिए होती थी। किसी को हानि पहुँचाने के लिए नहीं। कुटुम्ब, देश और आत्म-रक्षा का जब-जब प्रसंग आ पड़ता था, तब वे शस्त्र-विद्या का प्रयोग भी करते थे। एक ही गुरु का आदर्श सामने रहने से चरित्र-निर्माण में विभिन्नता भी नहीं होती थी।

विद्यापीठ

ऐसे आश्रमों से लाभ उठाने के पश्चात्, जो उच्चकोटि की भिन्न २ विषयों की विद्या प्राप्त करना चाहते थे, वे लोग उन विद्यापीठों में सम्मिलित होते थे, जिनका संक्षेप में मैंने उल्लेख ऊपर किया है। आध्यात्मिक, भावना-युक्त, सुन्दर चरित्र-निर्माण होने के बाद, मनुष्य कहीं भी अथवा किसी भी कार्य क्षेत्र में

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उतरे उसके पतन होने की सम्भावना बहुत कम रहती है। कहा जाता है कि इन विद्यापीठों में अध्ययन का कार्य प्रायः बौद्ध एवं अन्य साधु महात्मा करते थे। इन विद्यापीठों के संरक्षक बड़े बड़े राजा महाराजा थे। इनको चलाने के लिये कई गांवों की आवक होती थी। जिससे न तो विद्यापीठों के संचालकों को आर्थिक-चिन्ता होती थी और न विद्यार्थियों को विद्याध्ययन के लिए द्रव्य का बोझ उठाना पड़ता था।

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव

सैकड़ों वर्ष पहले की बातें अब तो शास्त्र मात्र और भूत-कालीन इतिहास की बातें रह गई हैं। समय का परिवर्तन हो गया। सदियों से हमारा देश विभिन्न-संस्कृतियों के आधीन रहा। हमारी विद्या, हमारी संस्कृति, हमारा रक्षण, हमारी धार्मिकता, हमारी अर्थ-संपत्ति सभी दूसरों के आधीन रही, और भी ऐसे लोगों के आधीन रही, जिनका ध्येय हमसे विपरीत, जिनकी संस्कृति हमसे विपरीत, बल्कि संक्षेप से यही कहना चाहिये कि चरित्र-निर्माण के साथ में संबंध रखने वाली किंवा मानव-जीवन की सफलता से सम्बन्ध रखने वाली, सभी बातें हमसे विपरीत! एक संस्कृति जीवन में भौतिकवाद को, जड़वाद को प्रधानता देती है और दूसरी संस्कृति (भारतीय संस्कृति) आध्यात्मिकवाद को। एक भोग की उपासिका है, तो दूसरी त्याग की, संयम की। एक स्वार्थसिद्धि के लिये दूसरे का सर्वनाश सिखाती है, तो दूसरी दूसरे के सुख के लिए स्वार्थ का भी बलिदान सिखाती है। इस प्रकार दोनों संस्कृतियों का संघर्षण ही हमारे देश के पतन का कारण हो रहा है। जिन महानुभावों के ऊपर चरित्र-निर्माण और संस्कृति-रक्षण की विशेष जवाबदारी है वे प्रायः भारतीय-संस्कृति से विपरीत

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

संस्कृति में पले पोसे होने के कारण, हमारे देश के लिए जो बातें बुरी हैं—पतन के कारणभूत हैं- उन्हें भी प्रोत्साहन दे रहे हैं।

उदाहरण के तौर पर—जैसे सिनेमा। कौन नहीं जानता कि चोरी, झूठ, प्रपंच, व्यभिचार आदि संसार की सारी बुराइयां सिनेमा सिखाता है? जहां हमारी संस्कृति माता बहन और युवती पुत्री के साथ एक आसन पर बैठने का पुत्र, भाई और पिता को भी निषेध करती है, वहां किसी भी स्त्री के साथ, किसी भी प्रकार बैठने, घूमने और सैर विहार करने की प्रवृत्ति कहां से चली? जहां कुल-शील की समानता और भिन्न गोत्र को देखकर विवाह शादियां करने की संस्कृति थी, वहाँ हर किसी के साथ हर किसी समय और हर किसी प्रकार सम्बन्ध (लग्न नहीं) जोड़ कर वर्ण संकर प्रजा उत्पन्न करने को किसने सिखाया? जहां किसी भी पर-स्त्री के सामने नेत्र से नेत्र मिला कर बात करना भी अनुचित समझा जाता था, वहां जवान लड़के लड़कियों को एक साथ बैठना, हँसी मजाक करना, एक बैंच पर बैठकर पढ़ना, एक साथ सिनेमा देखने को जाना इत्यादि बातें किसने सिखायीं? जहां माता, पिता, गुरु, अतिथि आदि पूज्यों को देव समझ कर उनके प्रति बहुमान रक्खा जाता था, उनके साथ विवेक और विनय पूर्वक बातचीत की जाती थी, वहां आज उनका अपमान किया जाता है। उनके प्रति युद्ध किया जाता है, उनके ऊपर मुकदमे किये जाते हैं। अरे, अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उनका खून तक किया जाता है, यह संस्कृति कहां से आयी? यहां हमारे खान-पान में भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार किया जाता था, पाप को पाप समझा जाता, वहां आज अहिंसा, सत्य और प्रेम के नारे लगाते हुए- महात्मा गांधी जी के शिष्य होने का दावा करते हुए—सभाओं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में महात्मा गांधी जी की अहिंसा, सत्य और प्रेम पर तालियां पिटवाते हुए भी मांसाहार छूटे नहीं, शराब छूटी नहीं, अण्डे छूटे नहीं, कोट, पतलून, टाई, कालर छूटे नहीं, सिगरेट छूटे नहीं, अर्थात् साहेबशाही छूटे नहीं, यह किसका प्रताप है? संक्षेप में कहा जाय तो—चरित्र निर्माण की पुकार करते हुए भी चरित्र निर्माण के विघातक हमारा खुद का आचरण हो बल्कि, चरित्र निर्माण की विघातक प्रवृत्तियों को उत्तेजन दिया जाय, इससे चरित्र निर्माण की सिद्धि कभी सिद्ध हो सकती है क्या? विशेष दुःख की बात तो यह है कि जो बातें हमारी भारतीय संस्कृति से विपरीत हैं—हानिकारक हैं—हानि प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है, फिर भी उस पाश्चात्य संस्कृति की देन को हम अच्छा समझ कर, दूसरों से भी अच्छा मनवाने का प्रयत्न करते हैं। यह देश का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या कहा जा सकता है?

विद्यार्थियों का चरित्र-निर्माण

मुझे तो यहाँ हमारी शाला, विद्यालयों, महाविद्यालयों आदि शिक्षण-संस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियों के चरित्र-निर्माण के विषय में कुछ कहना है। क्योंकि देश की, समाज की और वास्तविक मानवधर्म की भावी उन्नति का आधार उन्हीं के ऊपर है। वे ही सच्चे नागरिक बनकर भारतवर्ष को, जैसा पहले था, दुनियां का गुरु बना सकते हैं। और उसका सर्व आधार उन्हीं के 'चरित्र-निर्माण' पर रहा हुआ है। शिक्षण, यह तो चरित्र-निर्माण के साधनों में से एक है। हमारा मुख्य ध्येय तो चरित्र-निर्माण का है। 'बी० ए०' हों चाहे न हों 'एम० ए०' 'एल० एल० बी०' हो चाहे न हों 'पी० एच० डी०' 'डाक्टर' 'कलेक्टर' 'एडीटर' 'ओडिटर' 'कन्डक्टर' 'बेरिस्टर,'

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

'मास्टर', 'मोनीटर', हों चाहे न हों, हमारा प्रत्येक छात्र सच्चा नागरिक और हमारी प्रत्येक बहन सच्ची मातादेवी बननी चाहिए। जिन महानुभावों पर हमारे इन भावी उद्धारकों के, देवियों के जीवन-निर्माण की, सच्ची नागरिकता की जबाबदारी है, उनको बहुत गम्भीरता पूर्वक, सोच-समझ करके एक नवीन शिक्षण के क्षेत्र का निर्माण करने की आवश्यकता है। मैं यह समझता हूँ कि यह कार्य अति कठिन है। सहसा परिवर्तन करने लायक वस्तु नहीं है। क्योंकि सदियों से हमारे जीवन के अणु-अणु में विष व्याप्त हो गया है। हमें काया कञ्चन जैसी बनानी है किन्तु जब तक इस विष का नाश न हो, तब तक कायापलट का कोई भी प्रयोग सफल नहीं हो सकता। हमारे विष की यह परम्परा लम्बे समय से—पीढ़ियों से चली आई है। कोई भली अथवा बुरी प्रवृत्ति इसी प्रकार परम्परा में चली आती है। आज हमारे विद्यार्थियों, युवकों, युवतियों में कुछ बुराइयाँ कुछ लोग देख रहे हैं। वे हमारी खुद की देन हैं, यह हम भूल जाते हैं। सासू को सताने वाली बहू यह भूल जाती है कि "मैं भी कल सासू होने वाली हूं। मैं अपनी सासू को नहीं सता रही हूं, किन्तु अपनी बहू को सताने की विद्या सिखा रही हूं।" मानव अनुकरण करने वाला प्राणी है। वह यह नहीं देखता है कि यह जो कुछ कर रहा है, वह किस लिए कर रहा है। वह तो यही देखता है कि यह ऐसा करता है, इसलिए मुझे भी ऐसा ही करना चाहिए। पाश्चात्य संस्कृति को हमारे जिन देशवासियों ने अपना लिया है, उन्होंने कब सोचा था कि यह वेश, यह खान-पान, यह रहन-सहन उस देश के लिए उपयोगी हो सकती है, हमारे लिए नहीं ? फिर भी शौक से, मित्रों को राजी करने के लिए, अपना महत्व दिखलाने के लिये या किसी भी कारण से, पश्चिम की बातों को स्वीकार कर लिया। यहां तक कि आज

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उसे छोड़ना मुश्किल हो गया है। जब बड़े-बड़े लोगों की यह दशा है, तब फिर इन विद्यार्थियों की तो बात ही क्या कहें ?

कहने का तात्पर्य यह है कि उचित या अनुचित किसी भी प्रकार से जो बातें भली या बुरी हम एक दूसरे में देखते हैं, वे किसी न किसी की देन हैं। इसलिये मेरा नम्र मत है कि हमारे लाखों करोड़ों बालक-बालिकाओं, युवक-युवतियों का 'चरित्र-निर्माण' करना है तो हमारे वर्तमान ढाचे को आमूल परिवर्तन करना होगा। भले ही इसके लिए समय लगे, भले ही उसके लिए कितना ही स्वार्थत्याग करना पड़े।

यह कार्य इसलिये भी अधिक कठिन मालूम होता है कि चारों आश्रमों की श्रेष्ठता का मूल कारण जो गृहस्थाश्रम है, वही इस समय प्रायः छिन्न-भिन्न और पतित हो गया है। ऐसे असंस्कारी, झूठ और प्रपञ्च में ओत-प्रोत, जिनमें ईमानदारी का नामो निशान नहीं, अन्याय के द्रव्य से उदरपोषण करने वाले, गृहस्थाश्रम के नियमों का पालन न करने वाले, बालक को जन्म देने के अतिरिक्त, उनके प्रति अपना कर्त्तव्य नहीं समझने वाले, भाषा शुद्धि को भी न समझने वाले माता-पिताओं ने छः सात वर्षों की उम्र तक अपने बालकों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जो बुरे संस्कार डाले हैं-डालते हैं, उन्हें मिटाकर नवीन संस्कार और नया ही आदर्श चरित्र-निर्माण हमें करना है। इसलिए भी मैं यह कार्य अधिक कठिन समझता हूँ।

कुछ भी हो, मानव जाति के लिए कोई कार्य अशक्य नहीं है। साहस, दृढ़ प्रतिज्ञा, निरन्तर परिश्रम और धैर्य-पूर्वक किया हुआ प्रयत्न कभी निष्फल नहीं हो सकता। साठ साठ वर्षों की घोर तपस्या ने भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त कराई। पिछले तीन वर्षों में भी जो कुछ हुआ है, वस्तुतः देखा जाय तो कम नहीं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है। जो कुछ अशान्ति, दुःख और न्यूनता देखी जाती है वह तो कुछ लोगों के लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, अनुभव-हीनता, स्वार्थ-सिद्धि और जीवन की आदर्शिता के अभाव के ही कारण है। यदि ये बातें न होतीं तो, तीन वर्षों में ही भारत-वर्ष सच्चा स्वर्ग बन जाता।

फिर भी हमें निराशा छोड़कर हमारी पाठशाला, विद्यालय, महा-विद्यालय आदि शिक्षण-संस्थाओं में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों के चरित्र-निर्माण के लिए प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

क्या करना चाहिए ?

१—विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण के लिए, जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूं, वातावरण शुद्ध न किया जाय तब तक कोई भी प्रयत्न, जैसा चाहिए, वैसा सफल नहीं होगा। इसलिए चरित्र-निर्माण में जो-जो विघातक बातें हमारे देश में प्रचलित हों, ऐसी बातों को समूल नष्ट करना चाहिए। जैसे कि 'सिनेमा', शृङ्गार-रसपोषक पुस्तकें, समाचार-पत्रों में छपने वाले वीभत्स-विज्ञापन, मासिक, साप्ताहिक आदि पत्रों में छपने वाले बीभत्स चित्र आदि जो-जो बातें चरित्र को पतित करने वाली हों, उन्हें सरकार को चाहिए कि बन्द कर दें। अभी-अभी ऐसा सुनने या पढ़ने में आया है कि सरकार ने अमुक उम्र तक के बालकों को 'सिनेमा' देखने का प्रतिषेध किया है किन्तु विष तो विष ही होता है, छोटों के लिए और बड़ों के लिए भी। जब हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि बड़ों के गुण अवगुण का प्रभाव छोटों पर भी पड़ता है तो फिर जिस विष की छूट बड़ों को दी जाती है, उस विष का प्रभाव छोटों पर नहीं पड़ेगा यह कैसे

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

माना जा सकता है ? इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान के सिद्धान्तानुसार, निषेध भी कभी अधिक प्रेरणोत्पादक होता है। जिस चीज का किसी को, खास करके बालकों को निषेध किया जाता है, तो उसकी तरफ़ उसकी चित्तवृत्ति अधिक प्रेरित होती है। इसलिए ऐसी चीजों का सर्वथा अदृश्य होना, यही अधिक लाभदायक होता है। मैं यह मानता हूं कि 'सिनेमा' यह किसी भी कार्य-प्रचार के लिए एक बहुत अच्छा साधन है और उस साधन का उपयोग अपने जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए यदि सरकार करना अथवा कराना चाहे, तो वह कर सकती है। किन्तु वर्तमान समय में 'सिनेमा' द्वारा जो प्रचार हो रहा है, वह हमारी बहू-बेटियों हमारे बालक-युवकों तथा शुद्ध गृहस्थाश्रम को पतित बनाने के अतिरिक्त और किस बात में उपयोगी हो रहा है ?

इसी प्रकार शृङ्गार से भरे हुए उपन्यास आदि बीभत्स पुस्तकें, चित्र, विज्ञापन आदि पर भी सरकार को सख्त निषेधात्मक आज्ञाएँ प्रचलित करनी चाहिए। एक ओर से हमारे बालकों और युवकों का जीवन-स्तर ऊपर उठाने की हम बाते करें और दूसरी ओर से चरित्र के पतन करने वाले साधनों का प्रचार करें यह 'वदतोव्याघात्' नहीं तो और क्या है ?

जो गृहस्थ पैसा पैदा करने के लिए भारतीय संस्कृति से विरुद्ध ऐसा व्यभिचार-प्रचारक धंधा करते हैं वे देशद्रोही नहीं हैं क्या ? देश के शुभचिन्तकों का तो यही कर्त्तव्य है कि हमारी संस्कृति का रक्षण हो, हमारी बहन बेटियों का चरित्र पवित्र रहे, हमारे युवक उच्च प्रकार का अपना चरित्र निर्माण करके सच्चे महावीर, सच्चे नागरिक और सच्चे आदर्श पुरुष बनें, ऐसा कार्य करें।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

२—शीघ्रता से न हो तो धीरे धीरे ही हमारे देश की शिक्षण संस्थाओं का परिवर्तन करना जरूरी है। प्रत्येक ग्राम में शिक्षण संस्थाओं के अनुपात में छात्रालय अवश्य हों। प्राचीन पद्धति के अनुसार नहीं तो, कम से कम प्राचीन और नवीनता का मिश्रण करके हमारी शिक्षण संस्थाएँ निर्माण करनी चाहिएँ। शिक्षक भले ही भिन्न भिन्न विषयों के अनेक हों किन्तु उम्र और शिक्षण के लिहाज से विद्यार्थियों के विभाग करके उनका एक साथ रहना, एकसाथ खाना पीना, रहन-सहन, आदि हों, एवं एक ही वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध, व्यवहारकुशल, संयमी निर्लोभी अधिष्ठाता की देखभाल में उन विद्यार्थियों को रखा जाना चाहिए और शिक्षण के अतिरिक्त समय के लिए उनका कार्यक्रम ऐसा बनाया जाना चाहिए कि जिससे उनका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास भी हो, उनमें अनेक प्रकार के गुण आवें और वे सच्चे नागरिक बनें।

यद्यपि वर्तमान समय में विद्यालयों और महाविद्यालयों के साथ बाहर के विद्यार्थियों के लिए प्रायः छात्रालय (होस्टल) बने हैं परन्तु चरित्र निर्माण के लिए वे उपयोगी नहीं हैं। बाहर के विद्यार्थियों को रहने की अनुकूलता मात्र के वे छात्रालय हैं। मेरा आशय गुरुकुल जैसे छात्रालयों से है। किसी प्रकार के भेद-भाव न रखते हुये, शिक्षालयों में पढ़ने वाले सभी छात्रों के लिये, एक एक आदर्श-पुरुष की देखभाल में अमुक-अमुक संख्या में विद्यार्थियों को रखने का प्रबन्ध होना चाहिए। ऐसा होने से मात'-पिता के किंवा बाह्य जगत के कुसंस्कारों से वे बच जायँगे आपस में भ्रातृभाव बढ़ेगा, छोटे-बड़े की भावना दूर हो जायगी, और एक ही गुरु-नेता के नेतृत्व में उनका आदर्श जीवन बनेगा। निस्सन्देह उनका जीवन संकुचित न रहे, इसलिए उनके आमोद

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रमोद के शारीरिक विकास और बौद्धिक विकास के साधन भी रखे जाने चाहिए। आधुनिक विद्यार्थियों का कोई गुरु नहीं है, उनका कोई आदर्श नहीं है, उनका कोई संयोजक नहीं है, ऐसा जो आरोप लगाया जाता है यदि वास्तव में सत्य भी है, तो यह दूर हो जायगा।

३—तीसरा विषय है विद्यार्थियों के पढ़ाने के विषयों का। आजकल आमतौर से कहा जाता है कि विद्यार्थियों के पढ़ाने के विषय इतने अधिक और निरर्थक हैं, जिनके भार से विद्यार्थी की बुद्धि का, मस्तिष्क का कचुम्बर (चूर्ण) हो जाता है। खास करके उन विद्यार्थियों के लिये यह वस्तु असह्य मानी जाती है जो कि प्राथमिक और माध्यमिक शालाओं में पढ़ते हैं छोटी उम्र के हैं। यह बात विचारणीय है। प्राचीन पद्धति के अनुसार रटन (कण्ठाग्र करने की) पद्धति का आजकल विरोध किया जा रहा है। परन्तु इसके बदले में विषयों और ग्रन्थों का भार इतना बढ़ गया है कि जिससे विद्यार्थी और पालक दोनों को मानसिक एवं आर्थिक कष्ट उठाना ही पड़ता है। इसलिये शिक्षण के नव निर्माण में छोटे से लेकर बड़ों तक के शिक्षण क्रम में इस बात पर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है। होना तो यह चाहिए कि अमुक कक्षा तक के सभी छात्रों को एक समान शिक्षण देने के पश्चात् छात्रों की अपनी अपनी अभिरुचि, बुद्धि की प्रेरणा और संयोगों को देख करके इच्छित विषय में उनको विकसित बनाने की अनुकूलता करनी चाहिए। ऐसा करने से और ऐसी अनुकूलतायें प्रदान कर देने से, वे अपने-अपने विषयों में सम्पूर्ण दक्ष हो सकते हैं। आधुनिक छात्र 'खंड-खंडशः पाण्डित्यम्' प्राप्त करने से एक भी विषय में काफी दक्ष नहीं होता है बल्कि उससे विपरीत अनेक अरुचिकर विषयों का भार होने के कारण फुटबाल, वाली-बाल, टेनिस, क्रिकेट, हाकी, कबड्डी, खो-खो

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आदि अनेक खेलों के और मनोविनोद के साधनों के रहते हुए भी, आज का विद्यार्थी शारीरिक और मानसिक शक्तियों में इतना निर्बल रहता है कि जिसके वास्तविक स्वरूप को देखने से दया उपन्न होती है। शारीरिक व मानसिक निर्बलताओं में आजकल के वैषयिक प्रलोभन भी कारण हैं, जिनसे उनकी मनोवृत्तियाँ शिथिल सत्व-विहीन रहती हैं।

४ – इसी विषय के साथ संबंध रखने वाली बात पाठ्यग्रन्थों की भी है। पाठ्यग्रन्थ भी उम्र और बुद्धि को लक्ष्य में रखकर के निर्धारित किये जाने चाहिएँ। पुस्तकें, यह विद्यार्थियों के लिए रात दिन के साथी हैं। इसलिए पुस्तकें ऐसी होनी चाहिएँ जिनसे कि विद्यार्थियों को चरित्र-निर्माण में अधिक सहायता मिल सके। अक्सर देखा गया है कि सातवीं कक्षा तक पहुँचे हुए विद्यार्थियों को न तो शुद्ध पढ़ना ही आता है, न शुद्ध और सफ़ाई से लिखना। इसके कारण में पढ़ाने वाले की न्यूनता हो सकती है किन्तु बुद्धि और उम्र का ख्याल न रखते हुए पाठ्य-ग्रन्थों का निर्धारित किया जाना भी एक कारण जरूर है। परिणाम यह होता है कि प्रारम्भ में जो कच्चा पन रह जाता है, वह ठेठ तक चालू रहता है। मैंने ऐसे हिन्दी 'विशारद' और 'रत्न' उत्तीर्ण हुए महानुभावों के पत्र देखे हैं, जिनके अक्षर साफ सुथरे नहीं; इतना ही नहीं, ह्रस्व-दीर्घ की भी भूलें बहुत पाई गई। इसका कारण यही है कि प्रारम्भ से ही यह कच्चा रहा हुआ होता है इसलिए पाठ्यक्रम की पुस्तकें और उनका अनुक्रम इस प्रकार से होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों का ज्ञान दृढ़ हो जाय और वे भविष्य में किसी को 'किन्तु' कहने का कारण न हो सकें।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पाठ्य-पुस्तकों के चुनाव में कुछ अन्य बातों का भी ध्यान रखना आवश्यक है, जो मेरे नम्र मत के अनुसार निम्नप्रकार से है :—

(१) संसार के सारे पदार्थ तीन विषयों में विभक्त किये जा सकते हैं। हेय, ज्ञेय और उपादेय। त्यागने योग्य, जानने योग्य और आचरण करने योग्य। पाठ-ग्रन्थों में इन तीनों विषयों का स्पष्टीकरण होना चाहिए, जिससे कि विद्यार्थी किसी प्रकार की भ्रान्ति में न रहें और किसी विषय के लिए व्यर्थ झगड़ा न करें।

(२) प्रत्येक भारतीय धर्म, धर्मप्रचारक और धर्म के मौलिक सिद्धांतों का परिचय कराया जाय। इस परिचय में किसी प्रकार की अनुचितता, आक्षेप वा असभ्यता न आने पावे, इसके लिये हो सके तो उन-उन धर्मों के तटस्थ, पर धर्मसहिष्णु विद्वानों से ऐसे ग्रन्थ लिखाये जायँ। ऐसा न हो सके तो, वे पाठ ऐसे उदार तथा विद्वान उस धर्म के अनुयायियों को दिखलाकर उनकी सम्मति से सम्मिलित किये जायँ।

(३) ऐतिहासिक बातें, जो ऐसी पाठ्य-पुस्तकों में आवें, वे जिस समाज और धर्म से सम्बन्ध रखने वाली हों, उस समाज और धर्म के उदार इतिहासज्ञों को दिखाकर सम्मिलित करनी चाहिए। अभी-अभी बहुत से ऐसे नाटक तथा उपन्यास हिन्दी गुजराती तथा मराठी में प्रकाशित हुए हैं, जिनमें विषयों का रस उत्पन्न करने के इरादे से, द्वेषवृत्ति से अथवा वास्तविक इतिहास की अनभिज्ञता से, ऐसे अनुचित उल्लेख किये गए हैं, जिनके कारण समाजों में और लेखकों में बहुत बड़ा आन्दोलन हो रहा है। व्यर्थ इस प्रकार की असत्यता और परस्पर मनोदुःख, परस्पर घर्षण हों, ऐसा निमित्त न होने देना चाहिए।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसीलिए पाठ्य पुस्तकों को निर्धारित करते समय ही इसका ध्यान रखना चाहिए।

(४) ऐतिहासिक तथा भौगोलिक ज्ञान देने में विद्यार्थियों के निकट की वस्तुओं से उसका प्रारम्भ करना चाहिए। अक्सर देखा जाता है कि ऊँची कक्षाओं के छात्र यूरोप और अमेरिका के, चीन और जापान के, रशिया और फ्रान्स के पहाड़ को जानेंगे, पुलों की लम्बाई और चौड़ाई भी बता देंगे, नदी-नालों के नाम भी बतला देंगे, वहाँ के राजाओं की जन्म-मरण की तिथियाँ और राजत्वकाल को भी बतलायँगे, उनके लड़के लड़कियों के विवाह कहां हुए, यह वे शायद बतायेंगे किन्तु उनके देश में, उनके प्रांत में, उनके परगने में बल्कि उनके गाँव में कौनसी नदी बहती है, यह भी नहीं बता सकेंगे। हमारे यहाँ प्राचीन समय में कौन-कौन ऋषि, महर्षि, महात्मा हो गये, इसका इन्हें पता तक नहीं। इसलिये पाठ्यपुस्तकों का क्रम इस प्रकार रहना चाहिए कि जिससे अपने घर से लेकर समस्त-विश्व तक का ज्ञान उन्हें हो सके।

(५) भारतीय-शास्त्रों में स्त्रियों की ६४ और पुरुषों की ७२ कलाओं का वर्णन आता है। कला विषयक पाठों किंवा पुस्तकों का निर्माण करने के समय उनको सामने रखकर के पाठ्य रचना इस प्रकार करनी चाहिए जिससे उन कलाओं का यथा योग्य ज्ञान हो सके और साथ-साथ वे यह भी जान सकें कि इनमें कौन सी कलाएँ हेय, ज्ञेय तथा उपादेय हैं ?

(६) पाठ्य-रचना में बुनियादी शिक्षण का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। मौण्टिसरी पद्धति से बाल-शिक्षण का जो प्रचार हो रहा है, वह हमारे शिशुओं के चरित्र-निर्माण के लिए बहुत ही उपयोगी है किन्तु मध्यम और निर्धन स्थिति की जनता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के लिए यह शिक्षण आर्थिक दृष्टि से असह्य होने की शिकायत प्रायः लोगों में सुनी जाती है। इसलिए इसे सरल और अल्प-व्ययी बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके साथ ही साथ, मेरी नम्र सम्मति से, इसी बुनियादी शिक्षण के साथ में भाषा शुद्धि का प्रयोग भी सम्मिलित किया जाय, तो वह अधिकाधिक लाभप्रद हो सकता है। अर्थात् कम से कम तीन वर्ष से अधिक उम्र के शिशुओं को अक्षर ज्ञान न होते हुए भी, मात्र मौखिक इशारे से व्यावहारिक बातचीत में संस्कृत-हिन्दी आदि सिखाना चाहिए। अभी हमारे विद्यालय के अन्तर्गत चार से आठ वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए 'नूतन बाल शिक्षण शाला' नामक एक विभाग खोलकर कार्य प्रारम्भ किया गया है। इन छोटे बच्चों को भारतीय प्राचीन 'श्रौत' अथवा 'दर्शन' पद्धति से हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेजी में व्यावहारिक बोल-चाल की भाषा सिखाई जाती है। बालक बड़े विनोद के साथ में नेत्र और कर्णेन्द्रिय द्वारा, हम जो सिखाते हैं, उसे शुद्ध उच्चारण के साथ, सीख लेते हैं। न तो प्रत्येक को अलग-अलग पाठ देने की आवश्यकता रहती है और न रटने की ही। मेरा विश्वास है कि थोड़े समय में ये बच्चे शुद्ध-उच्चारण के साथ अपने घर में अथवा हर किसी व्यक्ति के साथ हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और अँग्रेजी में भी बात-चीत कर सकेंगे।

इसलिए मेरा अनुरोध है कि हमारे बाल-मन्दिरों, शिशु-मन्दिरों में इस प्रकार भाषा-ज्ञान के लिए इस पद्धति से शिक्षण अवश्य दिया जाना चाहिए।

मुझे आशा है कि पाठ्य-ग्रन्थों किंवा पाठ्यक्रम के लिए, जो मैंने ऊपर सूचना लिखी है, उन पर शिक्षा प्रेमी और शिक्षा-विकारी महानुभाव अवश्य ध्यान देंगे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

५—अब इस लेख को पूर्ण करने के पूर्व एक प्रधान बात की तरफ पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। यद्यपि यह निर्विवाद सिद्ध बात है कि हमारी भारतीय प्रजा में पीढ़ी दर पीढ़ी से संस्कारों की मलिनता चली आई है, शुद्ध-गृहस्थाश्रम प्रायः नहीं रहा है, इसलिये हमारे बालकों में चरित्र-निर्माण के योग्य जैसी पात्रता होनी चाहिये, वैसी नहीं है। फिर भी हमें चरित्र-निर्माण तो करना ही है। प्रयत्न करेंगे तो आज, नहीं तो, वर्षों, युगों के पश्चात् तो हम अवश्य ही साफल्य प्राप्त करेंगे, ऐसी आशा रखते हुए हमें प्रयत्न करना है।

चरित्र-निर्माण का सीधा सम्बन्ध शिक्षकों के साथ में है। माना कि आधुनिक छात्रों में प्रायः जैसी चाहिए वैसी पात्रता न हो, माना कि शिक्षकों के साथ में केवल चार या पांच घण्टे तक ही विद्यार्थियों का सम्बन्ध रहता है और माना कि आज के शिक्षक इन्हीं विद्यार्थियों में से शिक्षक बने हैं। ('शिक्षक' से मेरा तात्पर्य केवल पढ़ाने वालों से ही नहीं है, शिक्षक, निरीक्षक, और परीक्षक सभी से है जिनका सम्बन्ध एक या दूसरी रीति से छात्रों के साथ में है) ऐसा होते हुए भी शिक्षकों की जवाबदारी बहुत जबरदस्त है ऐसा मैं मानता हूं। 'शिक्षक' शिक्षक ही नहीं बल्कि 'गुरु' हैं, वे शिल्पकार हैं। पत्थर खराब होते हुए भी, अगर शिल्पकार चतुर है, तो उसमें से एक सुन्दर मुर्ति का निर्माण कर सकता है, बल्कि अधिक कुशल शिल्पकार बालू (रेती) की भी तो मूर्ति बनाता है। 'शिक्षक' एक फोटोग्राफर है, लेन्स हल्का होते हुए भी वह अपनी कुशलता से सुन्दर चित्र नहीं खींच सकता क्या? शिक्षक के ऊपर विद्यार्थियों की ओर से दो जवाबदारियां हैं। विद्यार्थियों को सुशिक्षित

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बनाने की ओर उनके चरित्र निर्माण की। 'शिक्षक' गुरू है, गुरु की 'गुरुता' के आगे शिष्य मस्तक झुकाए बिना न रहेगा। मेरा विश्वास है कि त्याग, संयम, वात्सल्य का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता। आज छात्रगण अपने शिक्षकों को समझ गये हैं, उनकी बेदरकारी का उन को खयाल है, उनके व्यसनों से वे परिचित हैं, उनके भ्रष्टाचार को वे स्वयम् अनुभव करते हैं, उनकी कर्त्तव्यशीलता वे अपनी आँखों से देखते हैं, उनका मिथ्याडम्बर, उनकी लोभवृत्ति, श्रीमन्त और निर्धन विद्यार्थियों के साथ होने वाली उनकी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियाँ इत्यादि प्रायः सभी बातें आज का विद्यार्थी प्रतिक्षण, देख रहा है। अहिंसा और सत्य,दया और दाक्षिण्य, वात्सल्य और प्रेम आदि का पाठ पढ़ाने के समय विद्यार्थी अपनी दृष्टि ऊँची नीची करके गंभीरता पूर्वक गुरुजी के हार्दिक भावों का पाठ पढ़ता है। विद्यार्थी उस समय क्या सोचता है? "अभी कल ही तो मुझको पास कराने के लिए इन्होंने रुपये ऐंठे हैं। आज गुरूजी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता की फिलॉसोफी मुझे समझा रहें हैं।" वेतन कम मिलता हो, कुटुम्ब का पोषण न होता हो किन्तु इन बातों का 'गुरुत्व' के साथ क्या सम्बन्ध है? जुआ खेलते समय खर्च की कमी नहीं मालूम होती, नित्य सिनेमा देखते समय पैसे की तंगी का भान नहीं होता, बार बार होटलों में जाकर के निरर्थक खर्च करते समय पैसों की कमी नहीं मालूम होती, विद्यार्थियों को पढ़ाने के समय, 'चरित्र निर्माण' के समय, दिल में यह सोचना कि पढ़ें तो पढ़ें, न पढ़ें तो भाड़ में जाँय, सरकार वेतन कम देती है, मँहगाई अपार है, कुटुम्ब का पूरा खर्च होता नहीं, हम क्यों पढ़ावें? पढना होगा तो ट्यूशन देंगे हमको, पास होना होगा तो मुँहमाँगे पैसों पर पास करा देंगे" यह कहाँ तक उचित है?

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जिन विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों के चरित्रनिर्माण की हम बातें करते हैं, उनके गुरुओं की प्रायः ऐसी दशा है। अभी कुछ दिनों पहले मध्यभारत शिक्षा विभाग के संचालक (डायरेक्टर) प्रसिद्ध शास्त्री और मनोविज्ञान के प्रखर अभ्यासी श्रीमान् झा महोदय ने उज्जैन के अपने एक भाषण में कहा था :—

"नवीन समाज की रचना में राजनीतिज्ञों की अपेक्षा शिक्षकों का अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है और यदि वे इसके महत्त्व को नहीं समझते और नवरचना में अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करते तो समाज की प्रगति हो नहीं सकती, परिवर्तित परिस्थितियों में अब शिक्षकों का यह अति महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है कि वे प्रजातन्त्रीय देश के उपयुक्त नागरिक निर्माण करें। इनका काम विषयों का अध्यापन मात्र नहीं है। हम केवल पाठक ही नहीं बल्कि शिक्षक भी हैं, उसका क्षेत्र बालक का सम्पूर्ण जीवन है और हमें बालक के समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करना है, इसका अर्थ यह है कि हमें बालकों के चरित्र को भी एक स्वतन्त्र देश के अनुरूप बनाना है।"

थोड़े किन्तु महत्वपूर्ण शब्दों में शिक्षकों के कर्त्तव्य का जो चित्रण अनुभवी शिक्षासंचालक महोदय के द्वारा उपस्थित किया गया है, उसके प्रति हमारा प्रत्येक शिक्षक ध्यान दे और उसके अनुसार कर्त्तव्य पालन करे, तो आज शिक्षा संस्थाओं में स्वर्ग उतर पड़े। हमारे बालक मानव-देव बनें। इसलिये सरकार से भी मेरा यह अनुरोध है कि शिक्षकों के उत्पन्न करने के लिए जो-जो ट्रेनिंग स्कूल खोले जायँ उनमें पाठ्य-पुस्तकों और पढ़ाने की रीति के साथ एक 'शिक्षक' किंवा 'गुरू' की हैसियत से उनमें किन-किन गुणों की आवश्यकता है, इसका भी अवश्य ध्यान

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रक्खा जाना चाहिये। प्रत्येक शिक्षक में सत्यभाषण, सदाचार, प्रामाणिकता, नम्रता, विवेक, विनय आदि गुण अवश्य होने चाहिएँ। तथा उन्हें चौर्य, घूस, बीड़ी, सिगरेट इत्यादि बाह्य व्यसनों का त्याग करना चाहिए जो प्रथमदर्शन में ही दूसरों पर प्रभाव डालते हैं।

एक बात और भी कह दूं। आज समस्त भारत में ऐसी अनेक संस्थाएँ चल रही हैं जो प्रजा की—जनता की-सहायता से चलती हैं, शिक्षालयों के साथ-साथ छात्रालयों को भी रखती हैं और गुरुकुल पद्धति पर शिक्षण तथा बालकों के चरित्र-निर्माण का कार्य करती हैं। ऐसी संस्थाओं को सरकार को काफी सहायता देकर आगे बढ़ाना चाहिए। वस्तुतः देखा जाय तो शिक्षा प्रचार के साथ चरित्र-निर्माण के कार्य में ऐसी संस्थाएँ सरकार का बहुत कुछ बोझा हलका करती हैं। ऐसी संस्थाएँ सरकार की ओर से चलाने में जो खर्चा करना पड़े, उससे आधे खरचे में, यदि वही कार्य होना हो, तो सरकार को ऐसे कार्य को अवश्य उत्तेजन देना चाहिए। शिक्षण और चरित्र निर्माण के कार्य में जनता का और शिक्षण प्रेमियों का इस प्रकार का सहकार, यह सचमुच ही अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य समझा जा सकता है। बेशक, ऐसी संस्थाएँ सरकार की नीति के अनुसार साम्प्रदायिकता का विष फैलाने वाली और राज्य की बेवफा नहीं होनी चाहिए। स्वतन्त्र भारत में इस प्रकार जनता और सरकार के सहयोग से जो कार्य होंगे वे देश के लिए अधिक लाभप्रद और कार्य-सिद्ध-कर हो सकेंगे। मेरे नम्र मत से ऐसी संस्थाएँ, फिर वे गुरुकुल हों या विद्यालय, महाविद्यालय हों चाहे बालमन्दिर कोई भी हों, सरकार को कम से कम पचास प्रतिशत व्यय देने का नियम रखना चाहिये। किसी विशेष परिस्थिति में सरकार पचास प्रतिशत से अधिक देकर भी उसको

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आगे बढ़ा सकती है। बल्कि सरकार को ऐसी संस्थाओं को अधिक प्रोत्साहन देकर उन्हें भारतीय संस्कृति का केन्द्र बनाना चाहिए। ऐसी स्वतन्त्र संस्थाओं का सरकार की ओर से निर्माण करने में सरकार को अधिक व्यय, अधिक परिश्रम और अधिक समय लगने की स्वाभाविक सम्भावना है। ऐसी अवस्था में सारे देश में, ऐसे जो-जो गुरुकुल, आश्रम, विद्यालय, महा-विद्यालय हों, उन्हीं को आगे बढ़ा कर नव-निर्माण का कार्यारंभ करना चाहिए।

शिक्षण और चरित्र-निर्माण के विषय में मैंने अपना नम्र अभिप्राय ऊपर प्रकट किया है। आशा है शिक्षा के अधिकारी एवं शिक्षा से प्रेम रखने वाले महानुभाव इस पर गौर करेंगे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भगवान महावीर का साम्यवाद

संसार में जब कभी स्वार्थ, लोभ आदि का साम्राज्य बढ़ जाने के कारण मानव, मानव का रक्षक न रहकर भक्षक बन जाता है, उस समय सारे संसार में अशान्ति फैल जाती है, विषमता बढ़ जाती है। श्रीमन्ती और गरीबी इन दोनों के बीच भयंकर दावानल सुलग उठता है। यह अग्नि यहां तक फैल जाती है कि व्यक्तिगत वैर ही नहीं रहता, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच में भी लड़ाइयां शुरू हो जाती हैं और निर्दोष मानव जाति का संहार हो जाता है। मानव जाति में हिंसक वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। उस हिंसक वृत्ति के परिणाम से, कुदरत भी अपने मानव संहार के शस्त्रों का उपयोग करने लगती है। भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, कीड़ों का उपद्रव, नाना प्रकार के रोग, दुष्काल अग्नि प्रकाण्ड, इत्यादि अनेक प्रकार के उपद्रव खड़े हो जाते हैं। मानव खास करके पढ़े लिखे समझदार लोग उसको 'देवी प्रकोप' अथवा कुदरत का प्रकोप कहते हैं, और है भी। किन्तु यह प्रकोप हमारी हिंसक वृत्ति का, हमारे पापों का परिणाम है, इस बात को वे भूल जाते हैं। इन उपद्रवों से बचने का एक ही उपाय है और वह है हिंसक वृत्ति को दूर करना। हमारी सुख समृद्धि के लिए हम हिंसक वृत्ति द्वारा जितने भी उपाय कार्यान्वित करते हैं, वे निष्फल होंगे और हो रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष अनुभव वर्तमान समय में छोटे-बड़े सभी कर रहे हैं।

जगत की शान्ति का एकमात्र उपाय है समस्त जनता के मनोभावों में समान भाव का उत्पन्न होना। जब तक हम एक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दूसरे के साथ समानता की भावना उत्पन्न नहीं करेंगे और व्यक्तिगत स्वार्थ व लोभ के अधीन होकर, अपने ही सुख को सुख समझते रहेंगे दूसरे के सुख का जरा भी विचार नहीं करेंगे, बल्कि अपने सुख की सिद्धि के लिये दूसरे का संहार करते रहेंगे, तब तक न व्यक्तिगत शान्ति होगी, न सामाजिक। अशान्ति का मूल कारण राग द्वेष है। राग द्वेष में से क्रोध, मान, माया, लोभ उत्पन्न होते हैं। और वह क्रोध, मान, माया, लोभ लड़ाई का मूल कारण हैं।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व, भारत के महान् क्रान्तिकारी भगवान महावीर स्वामी ने इस बात पर मनो मंथन करके अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् यह सिद्धान्त प्रकाशित किया कि, 'सव्वे जीवावि इच्छन्ति जीविउं न मरिजउं'—'सभी जीव जीने को चाहते हैं, मरने को कोई नहीं चाहता।' 'सभी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता।' 'हमारे सुख के लिये दूसरों का नुकसान करना, हिंसा है।' 'यही पाप है', 'हमको ऐसा करने का कोई हक नहीं है।' 'तुम जीओ और दूसरे को जीने दो।' लेकिन इन सिद्धान्तों का पालन मनुष्य तब कर सकता है जब अपने जीवन में अहिंसा, संयम और तप की भावना को जाग्रत करता है। उसका आचरण करता है। इन्हीं तीन सिद्धान्तों का आचरण मानव जीवन में लाने के लिये दो प्रकार का धर्म भगवान महावीर ने प्रकाशित किया :—१–साधु धर्म और २–गृहस्थ धर्म।

साधु धर्म में सर्वथा हिंसा का त्याग, सर्वथा झूठ का त्याग, सर्वथा चोरी का त्याग, सर्वथा अब्रह्मचर्य का त्याग और सर्वथा परिग्रह का त्याग बताया है। इस प्रकार सर्वथा त्यागी, संयमी, अपरिग्रही के द्वारा संसार में न व्यक्तिगत अशांति उत्पन्न हो

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सकती है और न सामाजिक। उन्हें न किसी चीज के लिए मोह ममत्व और इच्छा होती है, न वे किसी चीज के लिये लालायित होते हैं, न वे किसी दूसरे को दुःख देते हैं। उनका जीवन तो शांतिमय होता है।

दूसरा धर्म गृहस्थ धर्म है। गृहस्थाश्रम में रहने वाले को खुद की, कुटुम्ब की, समाज की और राष्ट्र की रक्षा के लिए सभी चीजों की आवश्यकता होती है। किन्तु गृहस्थ समाज अपनी आवश्यकताओं की मर्यादा में रहकर अपना जीवन व्यतीत करे. तो उसके निमित्त से दूसरे को दुःख होने का कोई कारण नहीं रहता। स्वार्थ और लोभ यही तो स्वयं को और दूसरों को दुख का कारण होता है। और भगवान महावीर स्वामी ने इसीलिये गृहस्थों को, अपनी आयश्यकता की पूर्ति भी हो जाय और दूसरों को दुःख देने का भी कारण न बने, ऐसा मध्यम मार्ग दिखलाया। और वह यह है कि हर एक चीज में गृहस्थ अपनी आवश्यकता को सोच कर मर्यादा निश्चित करे। जिससे दूसरों का हक भी न मारा जाय, दूसरे भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें और हमारे निमित्त से दूसरों को तकलीफ भी न हो। अर्थात् मानव-जाति में समानता उत्पन्न हो जाय और जहाँ समानता है, वहाँ विषमता नहीं रहती और विषमता के अभाव में घर्षण का भी कोई कारण नहीं रहता।

भगवान महावीर ने गृहस्थों के बारह व्रत दिखलाये हैं। उसपर सूक्ष्मता से विचार किया जावे तो, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मानव जाति में समानभाव-साम्यवाद उत्पन्न करने का ही इसका मूल हेतु था। प्रत्येक व्रत में भगवान महावीर ने मर्यादा रखने को कहा है। जहाँ मनुष्य मर्यादा में आ जाते हैं, वहाँ अतिरेक नहीं होता और अतिरेक नहीं होने से न खुद में

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अशान्ति होती है और न दूसरों को अशान्त कर सकता है। उन बारह व्रतों का संक्षिप्त स्वरूप देखिये।

उन बारह व्रतों के नाम ये हैं:—१-स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत, २-स्थूल मृषा वाद विरमण व्रत ३-स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत ४-स्थूल अब्रह्मचर्य विरमण व्रत ५-स्थूल परिग्रह विरमण व्रत ६-दिग्व्रत ७-भोगोपभोग विरमण व्रत ८-अनर्थदण्ड विरमण व्रत ९-सामायिक व्रत १० देशावकाशिक व्रत ११-पोषध व्रत १२-अतिथि संविभाग व्रत।

उपर्युक्त बारह व्रतों में प्रथम के पांच व्रतों में 'स्थूल' शब्द इसलिये रक्खा गया है कि गृहस्थ हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म परिग्रह, का सर्वथा त्याग नहीं कर सकता। इसलिये उसका स्थूल दृष्टि से त्याग करने का है।

तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो उपर्युक्त बारहों व्रत इसलिये हैं कि अपने जीवन की प्रत्येक वस्तु में मनुष्य मर्यादित बने। संग्रह शील न बने, ताकि उन चीजों का लाभ दूसरों को मिलता रहे। और खुद को भी अधिकाधिक प्राप्ति के लिये अशान्ति न रहे। वही समान भाव या साम्यवाद का हेतु है।

हम जीना चाहते हैं तो हम दूसरों को भी जीने दें। सिवाय कि अनिवार्य हिंसा कदाचित् करनी पड़े, तो उसकी छूट गृहस्थों को दी। दूसरे झूठ बोलें यह हम पसन्द नहीं करते, इसलिये हम को भी झूठ नहीं बोलना चाहिये। हम हमारी चोरी को पसन्द नहीं करते अर्थात् बिना पूछे कोई हमारी चीज ले ले, यह हम पसन्द नहीं करते, इसलिये हमको खुद को चाहिये कि हम किसी की भी चीज को न उठायें। हमारी बहिन बेटी आदि के प्रति कोई कुदृष्टि करे यह भी हम पसन्द नहीं करते, इसलिये हमें भी चाहिए कि हम व्यभिचार प्रवृत्ति से दूर रहें। परिग्रह

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

परिमाण भी इसलिए है कि आवश्यकता से अधिक किसी भी चीज का संग्रह करना मनुष्य के लिए अनुचित है। इस संग्रह-शीलता का ही परिणाम है कि, संसार में असमानता फैली हुई है और असमानता के परिणाम से सारे संसार में अशान्ति है और क्लेश हो रहा है। इसलिए भगवान महावीर ने परिग्रह का परिमाण प्रत्येक गृहस्थ को करने का उपदेश दिया। हर एक गृहस्थ अपनी आवश्यकताओं को सोचकर के यह नियम करे कि मुझे इस से अधिक द्रव्य नहीं रखना। मगर अधिक द्रव्य हो भी जाय, तो उस द्रव्य को जनता की सेवा में लगा दूंगा। ऐसा करने से अनायास उस द्रव्य का लाभ दुसरों को मिल जाता है। मर्यादित द्रव्य रखने की प्रतिज्ञा से उसकी लोभवृत्ति भी कम होती जाती है और मर्यादित बन जाती है। मर्यादित बनने से द्रव्य प्राप्ति के हेतु जो पापाचरण मनुष्य को करने पड़ते हैं, उससे वह बच जायगा। परिग्रह के परिणाम में न केवल द्रव्य का ही परिमाण करने का है किन्तु चल अचल सभी प्रकार की वस्तुओं का परिमाण करना है। इसलिये अन्य चीजों का संग्रह भी नहीं हो सकेगा।

इस परिग्रह परिमाण की पुष्टि के लिये ही, छटा और सातवां व्रत भी है। अर्थात् गृहस्थ यह प्रतिज्ञा करे कि मुझे प्रत्येक दिशा में अमुक हद से अधिक व्यापारार्थ न जाना और न कोई व्यापार करना। मनुष्य की मनोवृत्ति इस व्रत से कितनी विशुद्ध रहती है, इस का अनुमान कोई भी बिचारशील मनुष्य कर सकता है। जब हमें आवश्यकता से अधिक द्रव्य की जरूरत ही नहीं है तो फिर दुनिया में भटकने से क्या मतलब है? बेशक ज्ञान प्राप्ति या धर्म-प्रचारार्थ कोई भी कहीं भी जा सकता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सांतवा भोगोपभोग व्रत भी इसी के अनुसन्धान में है। इस व्रत का आशय यह है कि मनुष्य के उपयोग में आने वाली प्रत्येक चीज की मर्यादा प्रतिदिन गृहस्थ करे। संसार के सारे पदार्थ, जो मनुष्य के उपयोग में आते हैं, वे दो प्रकार के हैं। १. भोग्य और २. उपभोग्य जो चीज एक दफे उपयोग में लाने के पश्चात् दूसरी बार उपयोग में नहीं आती, वह भोग्य है। अन्न, पानी, विलेपन आदि चीजें एक दफे उपभोग में लाने के पश्चात् दूसरी वार उपयोग में नहीं आती जो चीज एक से अधिक बार उपयोग में आती हैं, वे उपभोग्य वस्तुयें हैं, जैसे मकान, वस्त्र, आभूषण इत्यादि। इन भारी चीजों का गृहस्थ प्रतिदिन नियम करे कि वह चीज मुझे दिन में कितनी बार और कितने प्रमाण में उपयोग में लाना है। यहां तक कि आसन, सवारी, स्नान, विलेपन, मुखवास इत्यादि प्रत्येक चीज कम से कम उपयोग में लाने का लक्ष्य रखकर के प्रातःकाल में उठते ही प्रतिज्ञा करे।

देखने में कई लोगों को विचित्र सा मालूम पड़ेगा किन्तु मनोविज्ञान की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो, यह एक आध्यात्मिक बल प्राप्त करने का जबर्दस्त सिद्धान्त है। मनोवृत्ति पर काबू रखनेके लिये, सच पूछा जाय तो वह एक योग क्रिया है। और इस से न केवल अपनी आत्मा को किन्तु दूसरों को भी बड़ा भारी लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार आठवां व्रत अनर्थ दंड विरमण व्रत है। संसार में मनुष्य ऐसी बहुत सी क्रियायें करता है जिसमें निरर्थक खुदको पापका उपार्जन होता है और दूसरे जीवों का नाश होता है। अनावश्यक प्रवृत्तियों को करना कहां की बुद्धिमता है? इसीलिये भगवान महावीर ने ऐसी निरर्थक उपद्रवकारी, दूसरों को सतानेवाली प्रवृत्तियों से दूर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रहने के लिये यह व्रत दिखलाया है। इसका आशय भी स्पष्ट है कि मानव सब के साथ में समान बुद्धि रक्खे, साम्यभाव रक्खे।

इसके अतिरिक्त सामायिक, देशावकाशिक, पौषध और अतिथिसंविभाग भी आध्यात्मिक बल उत्पन्न करने और त्याग-वृत्ति बढ़ाने के हेतु हैं। गृहस्थ दिन के चौबीस घंटों में से कुछ समय ऐसा निकाले कि जिस से एकांत में बैठकर संसार के समस्त जीवों के ऊपर साम्यवृत्ति धारण करे और केवल आत्मचिंतन करे। यह सामायिक वृत्ति का हेतु है। महिने पंद्रह दिन में गृहस्थ कभी एक दिन सर्वथा साधुवृत्ति का भी अनुभव करे। ताकि उसकी मनोवृत्ति सर्वथा त्यागवृत्ति की तरफ झुकती जाय। इसलिये पौषध व्रत दिखलाया गया है। साधु सर्वथा त्यागी है और गृहस्थ मर्यादित त्यागी है। किन्तु कभी न कभी मर्यादा को त्याग-वृत्ति छोड़कर वे सर्वथा त्यागी होना ही आत्मकल्याण का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है। क्यों कि त्याग जैसे अपनी लोभवृत्ति को कम करने का हेतु है, वैसे दूसरे को भी सुखी बनाने का हेतु है। इसलिये सर्वथा त्यागी होना यह भी एक आवश्यक और महत्व का कर्तव्य है। इसी प्रकार देशावकाशिक व्रत भी दिशाओं संबंधी दैनिक प्रवृत्ति को मर्यादित बनाने के लिये दिखलाया गया है। अन्त में बारहवां व्रत अतिथिसंविभाग है। गृहस्थ अपने खान पान की प्रत्येक चीज में से दूसरे का हिस्सा निश्चित करे और वह हिस्सा उन महानुभावों को दे कि जो अतिथि हैं। जिसका कोई घर बार नहीं, जिनकी कोई सम्पत्ति नहीं, जिनकी कोई तिथि और पर्व भी नहीं। ऐसे महात्मा, जिनका पूरा समय जगत के कल्याण के लिये व्यतीत होता है और जो अपने वैयक्तिक स्वार्थों का त्याग करके जगत-कल्याण के लिये अपना

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जीवन व्यतीत करता है। ऐसे महानुभावों का आदर-सन्मान करना आतिथ्य करना यह भी गृहस्थ का कर्तव्य है और यह व्रत भी साम्यवाद की वृत्ति का ही द्योतक है। गृहस्थों के उपर्युक्त बारह व्रत स्पष्ट दिखलाते हैं कि प्रत्येक गृहस्थ को यह लक्ष्य में रखना चाहिये कि आवश्यकता से अधिक कोई भी चीज रखने का हमारा कोई हक नहीं और उपर्युक्त व्रतों से यह भी स्पष्ट होता है कि साम्यवादी में हिंसकवृत्ति न हो दूसरों को परेशान दुःखी करने की वृत्ति न हो, लुटाऊ वृत्ति न हो, सत्ता लोलुपता न हो और संग्रहशीलता न हो। आज संसार में देखा जाता है कि दूसरे का भला करने का भाषण देने वाले स्वयं संग्रहशील बनते हैं, असाधारण परिग्रहधारी बनते हैं, मोटर और हवाई जहाजों के सिवाय जमीन पर पैर रखना बुरा समझते हैं। स्वयं पूँजीवादी बनते जाते हैं और जनता को दुःख सहन करने का उपदेश करते हैं। बातें तो भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध और गांधीजी की अहिंसा की करते हैं, लेकिन स्वयं हिंसा से दूर नहीं होते।

कहने का आशय यह है कि संसार में साम्यवाद के सिवाय शान्ति नहीं। शान्ति स्थापना की अनेक योजनायें निकलती हैं, प्रयत्न भी होतेहैं, किन्तु मेरा नम्रमत हैकि, मानव मानवके साथ में समानता का बर्ताव न करेगा, 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत', इस सिद्धांत को नहीं अपनावेगा, जब तक रागद्वेश की वृत्ति कम नहीं होगी तब तक जगत में शान्ति कभी नहीं हो सकती। इसलिये हमें भगवान महावीर के उपदेशानुसार साम्य-वृत्ति, समानभाव स्वयं उत्पन्न करना चाहिये और जगत में इसका प्रचार करना चाहिये।

यही संसार में शान्ति का एक मार्ग है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मच्छी के उत्पादन द्वारा मानव जीवन की रक्षा

भारतवर्ष की संस्कृति अन्य देशों से सर्वथा भिन्न है, अन्य देश मानव, मानव के साथ हमदर्दी, प्रेम रखने की संस्कृति रखते हैं, तथा साथ साथ अपने स्वार्थ के कारण दूसरों का संहार करना भी कर्तव्य समझते हैं। इससे विपरीत, भारतीय संस्कृति, जिसमें प्राण हैं, जीव है, चेतना है, उन सब के साथ सम भाव रखने का आदेश करती है।

"आत्मानः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"

अपनी आत्मा से जो प्रतिकूल हो, उसका व्यवहार दूसरों के साथ न करना, यह भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति' अपनी आत्मा के बराबर सबकी आत्मा को देखना, यह भारतीय संस्कृति है। और यही कारण है कि जीव छोटा हो बड़ा, एकेन्द्रीय हो या पन्चेन्द्रीय, मनुष्य हो किंवा वनस्पति, सब के साथ समान भाव रखकर किसी को कष्ट न हो ऐसा बर्ताव करना, यह सिद्धान्त है।

भारत के तीनों मुख्य धर्म-सनातन, जैन और बौद्ध में प्रतिपादित किया गया है कि किसी भी जीव को कष्ट पहुंचाना, इसी का नाम हिंसा है। किन्तु जीवन यापन करने में अनिवार्य हिंसा हो जाती है, जैसे भोजन के लिए अन्न और फल फूल का भक्षण आदि, उस अनिवार्य हिंसा का बचाव करने लिए ही

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हमारे ऋषि महर्षियों ने गृहस्थों के लिए जो हिंसा का त्याग दिखाया, वह इस प्रकार बतलाया:—

निरागस्क जन्तूनां, हिंसां संकल्प तस्त्यजेत्

निरपराधी, त्रस जीवों की हिंसा को इरादा पूर्वक त्याग करें। इस व्याख्या में गृहस्थाश्रम को चलाते हुये, जीवन-निर्वाह करते हुये, देश और राष्ट्र की रक्षा करते हुये भी मनुष्य बहुत हिंसा से बच सकता है।

वस्तुतः देखा जाय तो, निरपराधी छोटे या बड़े किसी भी जीव को कष्ट पहुँचाना यह अन्याय है। हम बड़े हैं, हम में शक्ति है, इसलिए किसी भी छोटे जीव के ऊपर हम हर प्रकार का अत्याचार कर सकते हैं, ऐसा समझना मानवता से नीचे गिरना है। आज मानव जाति अपने स्वार्थ के लिए अपनी शक्ति का कितना दुरुपयोग कर रही है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय शासनाधिकारी, मानव जाति की रक्षा के हेतु पश्चिम का अनुकरण करके, हिंसा जन्य जो प्रयोग कर रहे हैं, वह भारत की संस्कृति के विरुद्ध है। इतना ही नहीं, किन्तु प्रकृति के नियमों से भी विरुद्ध होने के कारण, जितना हम सुख के लिए प्रयत्न करते हैं, उतना ही अधिकाधिक दुख हमारी मानव जाति पर आता हो रहा है। दूसरे जीवों का संहार कर के, हम स्वयं सुख कभी भी नहीं पा सकते। यह प्रकृति का अटल नियम है। जहाँ जहाँ जितनी २ हिंसा अधिक, वहाँ वहाँ प्रकृति ने, भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, लड़ाई, रोग, अग्नि प्रकोप आदि अपने शस्त्रों द्वारा दण्ड दिया है। पश्चिम का अनुकरण करके भारत में जितनी हिंसा बढ़ रही है, उतना ही दुख का दावानल सर्वत्र फैल रहा है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अभी अभी मच्छी के उत्पादन की ओर हमारे राज्याधिकारियों की प्रवृत्ति बढ़ती हुई नजर आती है।

अन्न के उत्पादन के प्रयोग में जितने हिंसा जन्य प्रयोग किये जाने लगे, उतनी ही उसमें असफलता प्राप्त हुई। इतना ही नहीं, 'तीन सांधे और तेरह टूटे' वाली कहावत के अनुसार, दिन प्रतिदिन अधिकाधिक संकट आता ही जाता है। अब उसमें जब हाथ नीचे गिरते जा रहे हैं, तब मच्छी का उत्पादन बढ़ाने की नौबत आई। किन्तु यह भूला जाता है कि, मच्छी के उत्पादन से होने वाली हिंसा का क्या प्रतिफल हमें भोगना पड़ेगा? हिंसा का प्रतिफल सुख न कभी हुआ है, और न कभी होगा। ईश्वर को न मानने वाले भी, प्रकृति के नियमों को तो अवश्य मानते हैं। प्रकृति का प्रयोग मानव जाति के ऊपर क्यों बढ़ता जारहा है, इसका विचार उन महानुभावों को नहीं आता है, जो सत्ता, शक्ति और दुनियादारी के 'ऐश आराम में मस्त रहते हैं, किन्तु जगत में जो प्रत्यक्ष हो रहा है, वह आंखों वाले देखते हैं, हृदय वाले सोचते हैं, और बुद्धि वाले स्वीकार करते हैं कि, प्रकृति के इस प्रकोप में हमारी गलती ही कारण है। 'दुख यह भूल का ही परिणाम है' इसमें दो मत नहीं हो सकते। हमारे सुख के लिए, हिंसा जन्य प्रवृत्ति, दूसरे जीवों का संहार यह प्रकृति के नियमों से विपरीत व्यवहार है। और इस व्यवहार का ही परिणाम है कि, प्रकृति-कुदरत अपने शस्त्रों द्वारा उस हिंसा का प्रतिफल हमें देती है।

मानव जाति के लिए वनस्पति, फल, फूल का आहार निर्माण हो चुका है। और वह भी अनिवार्य है। उससे अधिक कदम आगे बढ़ाकर, अन्य जीवों की हिंसा द्वारा मानव जाति का रक्षण, यह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन है। उस उल्लंघन का भयंकर फल हमें भोगना पड़ेगा, यह निश्चित है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विशेष दुःख की बात यह है, कि मध्यभारत जैसा सात्विक और अहिंसक प्रान्त, कि जहाँ बहुत अन्न उत्पन्न होता है, जहाँ की मनुष्य जाति धर्म परायण है, जहाँ कुदरत की कृपा इतनी है कि प्रान्त अपना पोषण करने के अतिरिक्त, हजारों, लाखों मन अनाज, दूसरे दुखी देशों को भेज सकता है और भेज रहा है। उस प्रान्त के शासनाधिकारी, मच्छी के उत्पादन को अशोभनीय और अनिच्छनीय प्रवृति का अनुकरण करने जा रहे हैं। प्रकृति के नियमों का वे थोड़ा अभ्यास करें। जहाँ जहाँ प्रकृति ने दुष्काल, भूकम्प, बाढ़, रोग, लड़ाई, अग्नि प्रकोप आदि अपने शस्त्रों का प्रयोग किया है, वहाँ ऐसा क्यों हुआ, और मध्यभारत तथा अन्य ऐसे प्रान्तों में ऐसा उपद्रव क्यों नहीं हुआ, इसके कारणों को खोजेंगे, तो उन्हें पता चलेगा कि प्रकृति का प्रकोप वहाँ ही अधिक हुआ है, होता है, जहाँ मानव जाति, अपनी मानवता को छोड़ अपने स्वार्थ के लिए दूसरे जीवों के संहार की प्रवृत्ति में पड़ती है। इसलिएः—

मेरा अन्त में अनुरोध है कि मच्छी का उत्पादन या ऐसी भयंकर हिंसा जन्य प्रवृत्ति द्वारा मानव जाति के रक्षण का विचार छोड़ दिया जाय। तात्विक दृष्टि से भी देखा जाय तो, हिंसा जन्य प्रवृत्तियों द्वारा न कोई देश सुखी हुआ है, और न होगा। आगे या पीछे, एक या दूसरे तरीके से उसका नाश अवश्य हुआ है। इसलिए, भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध और अभी अभी हमारे युग में महात्मा गाँधी ने "जीवो और जीने दो" का सन्देश सुनाया है, उसके अनुकूल हमारा जीवन बना कर हमें किसी भी जीव की हिंसा के द्वारा हमारे देश की सुख की आशा छोड़ देना चाहिये।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आधुनिक शिक्षा में सिनेमा का स्थान

शिक्षा, यह जीवन विकास का एक प्रधान साधन है, इस लिये जीवन के साथ शिक्षा का सम्बन्ध भी अनादिकाल से रहा है। समय के परिवर्तन के साथ शिक्षा में भी परिवर्तन होता रहा है। अर्थात् शिक्षा के साधन भी अनेकों बनते गये और उसमें परिवर्तन भी होता गया, किन्तु शिक्षा का आदर्श जो 'संस्कृति का संरक्षण' होना चाहिये, वह अवश्य रहा है। वह साधन साधन नहीं कहा जा सकता है, जो साध्य के आदर्श से वंचित रखे या नीचे गिराये। बहुत से साध्य ऐसे होते हैं, जिसका आधार, उस साधन का उपयोग करने वाले के ऊपर रहता है। अथवा यों कहना चाहिये कि, प्रत्येक साधन में दो शक्तियाँ रही हैं, एक साध्य को सिद्ध करने की शक्ति और दूसरी साध्य से वंचित रखने या नीचे गिराने की शक्ति, उसके उपयोग करने वाले के ऊपर ही उसका आधार है। हथियार रक्षक भी है और नाशक भी, जहर मृत्यु को देने वाला है और शरीर को पुष्ट बनाने वाला भी। शास्त्र उन्नति पथ पर ले जाते हैं, और वे ही शास्त्र शस्त्र का भी काम करते हैं। द्रव्य जीवन का साधन है, और नैतिक पतन करने वाला भी। संसार की ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसमें साधकता और बाधकता, संरक्षण और नाश के गुण न हो।

वर्तमान समय में देखा जाय तो शिक्षण प्रणाली इस प्रकार की बनाई गई है, जो शिक्षण का मुख्य हेतु 'जीवन विकास' होना चाहिये, उससे मानव को वंचित रख रही है। मानव

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जीवन का विकास माने मानवता के गुणों का प्रकट होना। दया दाक्षिण्य हमदर्दी, प्रेम, सहानुभूति, कर्तव्य पालन, सदाचार— यह मानवता के गुण हैं। 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेशांन्न समाचरेत' यह मानवता का प्रतीक है। 'आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन' यह मानवता की निशानी है। मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्' यह मानवता के उच्च गुणों के आधार स्तम्भ हैं। सत्यं वद, धर्मं चरं, यह मानवता के सदाचरण हैं।

जिस शिक्षा से, मानवता के वे गुण प्रकट होते हो, वही शिक्षा, शिक्षा है! वही शिक्षा जीवन विकास का साधन भूत है। आज सारे भारतवर्ष में वर्तमान शिक्षा, हमारे 'जीवन विकास' में कितनी विघातक हो रही है। इसकी पुकार बड़े से बड़े शिक्षण शास्त्री देश के नेता और उच्चकोटि के शासक भी कर रहे हैं। किन्तु वर्तमान शिक्षा में कहां दोष है, इसका सूक्ष्मता से अवलोकन बहुत कम लोग करते हैं। और करते हैं, तो उसका सुधार करने का प्रयत्न नहीं करते, अथवा कम करते हैं।

भारतीय संस्कृति से विपरीत संस्कृति ने, हमारी भारतीय संस्कृति के ऊपर सदियों तक आक्रमण किया। हमने बिना विचारे उसका अनुकरण किया। उनमें जो गुण थे, उसका अनुकरण तो नहीं किया। किन्तु उनको राजी रखने के लिए अथवा किन्हीं कारणों से उनकी उन बातों का अनुकरण किया जिससे हमारी संस्कृति का नाश हो। जिसको हम सदाचरण मानते हैं। उससे हमारा पतन हो, और हमारे ध्येय से वंचित होकर हम अधिक से अधिक गुलामी की जंजीरों में जकड़े जाँय।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

"प्रवृत्ति वृत्ति की द्योतक है" व्यक्ति या समाज की प्रवृत्ति पर से ही उनकी वृत्ति का अनुमान किया जा सकता है। आज हमारे देश में शिक्षण प्रवृत्ति में भी जो कुछ विघातक बातें प्रचलित देखी जाती हैं, वह हमारे देश के उच्चकोटि के शासकों की वृत्ति का ही परिणाम कही जा सकती है।

किन्तु, यह सद्भाग्य की निशानी है कि जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, हमारी शिक्षा में जो न्यूनतायें हैं, वे छोटे कुछ महानुभावों के ध्यान में आने लगी हैं और एक हवा ऐसी चली है कि, हमारे देश के योग्य शिक्षा में आमूलन परिवर्तन करके नवीन शिक्षण प्रणाली प्रचलित की जाय तो साधन इस समय शिक्षा प्रचार के लिए प्रचलित है, उन साधनों का भी इस प्रकार सुचारु रूप से उपयोग किया जाय। जिससे वे साधन शिक्षण के हेतु की सफलता में बाधक न होते हुये साधक बन जाय। ऐसे अनेक साधनों में से एक साधन सिनेमा भी है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि, सिनेमा ने आज सारे संसार को मानवता से कितना नीचे गिरा दिया है। मानव जाति का नैतिक पतन किया है। पुण्य पाप की भावनाओं को न मानने वाले 'ऋणं कृत्वा घृतं भिवेत्' इस सिद्धान्त को मानने वाले, केवल ऐहिक (पौद्गलिक) सुखों में ही जीवन की सार्थकता समझने वाले और केवल अपने स्वार्थ के लिए संसार का संहार करना पड़े, तो भी उसमें अनुचितता न समझने वाले लोगों के लिये सिनेमा भले ही एक अपने आनन्द का साधन बना हो, किन्तु जिस भारतीय संस्कृति के कुछ प्रतीक ऊपर दिखाये हैं, उस भारतीय प्रजा के लिये सिनेमा सचमुच ही आदरणीय नहीं हो सकता है। किन्तु जैसा मैं ऊपर कह चुका हूं, कोई भी साधन लाभप्रद बन सकता है और हानिप्रद भी।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उपयोग करने वाले के ऊपर उसका आधार है। जहर, जहर होते हुए भी, उसको समुचित रूप से परिणत करके उपयोग किया जाय तो वह अद्भुत बल दायक भी बन सकता है। इसमें तो किंचित भी सन्देह नहीं कि सिनेमा प्रचार का अद्भुत साधन है। जड़वादी लोगों ने उसका उपयोग पौद्गलिक सुखों और भोग विलास की पुष्टि के लिये भले ही किया हो। किन्तु उसी साधन का उपयोग हम हमारे देश की आध्यात्मिकता हमारे देश का ऐक्य, हमारे देश की उच्च शिक्षा आदि बातों के लिये करें तो वही साधन महा उपकारी हो सकता है। 'जीवन विकास' का मुख्य साधन शिक्षा है। मैं ऊपर कह चुका हूं कि राष्ट्र का उत्थान यदि हमें करना है तो हमारी शिक्षण प्रणाली में आमूलन परिवर्तन करने की आवश्यकता है। ऐसी अवस्था में यदि सिनेमा के द्वारा नवीन शिक्षण प्रणाली का प्रचार किया जाय तो हजारों शिक्षकों के द्वारा जो लाभ नहीं उठा सकते हैं। वह एक मात्र सिनेमा द्वारा उठा सकते हैं। हमारे बालक बालिकाओं के 'चरित्र-निर्माण' करने वाले ऐसे उच्चकोटि के शिक्षण शिक्षिकाएँ तैयार करने में हमें कई वर्ष लगेंगे। किन्तु सिनेमा ही एक ऐसा साधन है कि जिसके द्वारा जिस प्रकार का ढाँचा हम बालकों में ढालना चाहते हों उस प्रकार का प्रचार हम कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त पालकों और शिक्षकों के कर्तव्य का प्रचार भी इसी के द्वारा अनायास हो सकता है।

भारतवर्ष में अभी भी ऐसी शिक्षण संस्थायें हैं जो हमारी प्राचीन शिक्षण प्रणाली और नवीन शिक्षण प्रणाली के मिश्रण पूर्वक आदर्श पुरुषों के नेतृत्व में और उच्चकोटि के सदाचारी शिक्षकों द्वारा चलती है। ऐसी शिक्षण संस्थाओं की कार्य प्रणाली, शिक्षण पद्धति और उसके सारे वातावरण की फिल्में

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लेकर जगह जगह दिखलाई जावे तो इसका बड़ा प्रभाव पड़ सकता है इसके अतिरिक्त बुनियादी शिक्षण पद्धति की फिल्में भी बहुत कुछ लाभदायक हो सकती हैं।

मेरे कहने का आशय यह है कि सिनेमा हमारे जीवन को एक मृत्युदायक जहर समान होते हुये भी शिक्षण प्रचार में उसका उपयोग सुचारू रूप से किया जाय, तो वह अमृत का काम कर सकता है। बौद्धिक शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और हर प्रकार की शिक्षा का प्रचार करने के लिये सिनेमा अपूर्व साधन है और उस साधन का उपयोग अधिक से अधिक मात्रा में किया जाय, तो वह लाभदायक हो सकता है। इसके साथ ही साथ जो फिल्में आज नैतिक पतन का कारण हो रही है, ऐसी फिल्मों को एक दम बन्द करना भी जरूरी है। अनादिकाल से मानव की मनोवृत्तियाँ लोभ, मोह, माया, विषय, वासना की ओर झुकी हुई हैं। शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाली अच्छी फिल्मों का प्रचार करते हुये भी, ऐसी बुरी फिल्में बन्द न होगी तो उन फिल्मों का जैसा प्रभाव पड़ना चाहिये, नहीं पड़ सकता वे जैसी चाहिये सफल नहीं हो सकती है इसलिये सरकार की ओर से यदि राष्ट्र का वास्तविक निर्माण करना है, तो दो बातों की आवश्यकता है। (१) जीवन का पतन करने वाली फिल्मों को बन्द करना और दूसरी जीवन के वास्तविक गुणों को प्रकट करने वाली फिल्मों का प्रचार करना।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मानव और मांसाहार

संसार के भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणियों में मानव का स्थान ऊंचा है इसलिये कि उसमें मानवता है, विचारशक्ति है, दया है, दाक्षिण्य प्रेम है, हमदर्दी है यही कारण है कि वह स्वभावतः अत्याचार को सहन नहीं कर सकता। स्वार्थी, लोभी होने के कारण वह अपने धर्मों को भूल जाता है, किन्तु फिर भी बड़ा जीव छोटे पर अत्याचार करता होगा, शक्तिशाली शक्तिहीन को सताता होगा तो वह सहन नहीं करेगा। उसको बचाने का अवश्य प्रयत्न करेगा।

इसी प्रकार मानव के शरीर की रचना भी इस प्रकार की हुई, वह अपने शरीर से किसी भी जीव को कष्ट न दे। अर्थात बुद्धि, विचार शक्ति और शरीर रचना ये तीनों मानव को इस प्रकार के मिले हैं कि वह किसी को भी कष्ट न दे और न वह स्वयं पापी बने। मिली हुई चीजों का दुरुपयोग करके वह चाहे कुछ करले और वह दुरुपयोग करता है केवल स्वार्थ और लोभ के कारण से। किन्तु प्रकृति द्वारा मानव को दी हुई शक्तियों और शरीर रचना आदि पर ध्यान रखते हुए वह अपना जीवनयापन करे तो वह नर का नारायण बन सकता है।

मानव जाति के लिये, अपने खुद के लिये जो विचारणीय प्रश्न हैं, उनमें माँसाहार का भी एक प्रश्न है। क्या मांस मनुष्य की स्वाभाविक खुराक है? मानव जाति के लिए यह प्रश्न उठाना ही लज्जास्पद बात है। मानव के, प्राचीन इतिहास को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जिसको कुछ इतिहासकार आदि काल कहते हैं देखा जाय तो जब मानस ने जीवन का विकास नहीं किया था, उस समय भी मानव जाति अपने स्वाभाविक फलाहार से जीवन निर्वाह करती थी। प्रसिद्ध बंगाली इतिहासकार राखालदास बन्द्योपाध्याय ने अपने बंगला इतिहास भाग १ के पृष्ठ ३ में लिखा है 'पृथ्वी तत्व और प्राणी तत्व को जानने वाले इस निर्णय पर आये हुए हैं कि मानव जाति के शैशवकाल में मनुष्य शाक भोजी थे' ....'यह निश्चित है कि, मानव जीवन के प्रारम्भ में हमारे पूर्व पुरुष फलाहारी थे, मांसाहार नहीं करते थे।" "माँसाहारी जीवों को जन्मकाल से जिस प्रकार के तीक्ष्ण दाँत होते हैं, वैसे मनुष्यों को कभी किसी अवस्था में नहीं होते।"

पुरातत्व की खोज करने वालों ने जैसे यह निश्चय किया है कि प्राचीन काल में मानव जाति मांसाहार नहीं करती थी। शरीर रचना की दृष्टि से देखा जाय तो मांसाहार यह मनुष्य की स्वाभाविक खुराक नहीं है। न केवल मनुष्यों के लिये ही, किन्तु संसार में प्राणी मात्र के दो विभाग हैं एक माँसाहारी और दूसरा वनस्पति आहारी। हाथी, गाय, भैंस, बैल, बकरी आदि जानवर, जो मांसाहारी नहीं हैं चाहे वह जंगल में रहते हों चाहे मनुष्य वस्ती में, इसके अतिरिक्त बाघ, शेर, बिल्ली, कुत्ता आदि कई जानवर हैं, जो मांसाहारी हैं। हमें देखना चाहिये कि वनस्पति आहारी और मांसाहारी जीवों में कुदरत ने क्या अन्तर रखा है ? उनके दांत, जीभ आदि जठर-तीनों चीजें, जो प्रत्येक प्राणी को उपयोग में आती है, भिन्न भिन्न हैं। मांसाहारी के दांत टेढ़े होते हैं। शेष के दांत भिन्न प्रकार के होते हैं। मांसाहारी जीवों की जिव्हा इस प्रकार की बनी है कि वह पेय पदार्थ का उस जिव्हा से ग्रहण करते हैं, अर्थात मांसा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हारी प्राणी पानी, दूध आदि प्रवाही पदार्थ जीभ से ही लेते हैं ओंठों से नहीं। जबकि निरामिष भोजी प्राणी प्रवाही पदार्थ होठ से ग्रहण करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक जीव को अपनी खुराक के पाचन के लिए एक जठर बना रहता है, जिसकी उष्णता से पाचन होता है। यह वैज्ञानिक सिद्ध बात है कि माँसाहारियों का जठर इतना उष्णतायुक्त है कि जो मांस जैसे भारी पदार्थ को भी हजम कर सकता है, फलाहारी भोजियों का जठर वैसा नहीं होता।

इस प्रकार शारीरिक रचना से भी विचारपूर्वक देखा जाय तो मानव जाति के लिए मांसाहार स्वाभाविक खुराक नहीं है।

संसार के और प्राणी जिनका मांस यह स्वाभाविक खुराक नहीं है, उन प्राणियों ने अपने स्वभाव को नहीं बदला। चाहे वह किसी भी दशा में हों पर वे मांसाहार नहीं करते और इसी से उन्होंने अपनी सात्विकता को कायम रखा है।

मानव जाति भी मांसाहारी नहीं थी किन्तु जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, जैसे मानवजीवन का विकास हुआ, बुद्धि बल बढ़ा, वैसे वैसे उसमें स्वार्थ, लोभ की मात्रा अत्यन्त बढ़ गई। परिणाम यह हुआ कि उसने अपनी शक्ति का उपयोग, हीन शक्ति वालों पर अत्याचार करने में किया और यही कारण है कि धीरे-धीरे प्रकृति से विरुद्ध, कुदरत से खिलाफ उसने व्यवहार शुरू किया और इसी लोभ लालच के कारण उसने माँसाहार शुरू किया। इसका परिणाम यह आया कि मनुष्य का हृदय कि जहां ईश्वर का स्थान माना जाता है, उसको उसने जीवों का कब्रस्तान बनाया। जिस चीज को छूने से मनुष्य स्वयं को अपवित्र समझता था, उसी चीज को पेट में डालकर अपने को पवित्र भी समझने लगा। इसके अतिरिक्त

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मनुष्य ने अपने हृदय को राक्षसी हृदय बनाया। अपनी हार्दिक दया को दूर कर अपने हृदय को निर्दय बनाया। मानवता की स्वाभाविक सात्विकता को मिटाकर, उसने तामसिकता उत्पन्न करली।

जब मनुष्य अपने स्थान को चूकता है, नीचे गिरता है तब वह यह समझते हुए कि मैं भूल कर रहा हूं। अपने बचाव की झूठी दलीलें खड़ी करेगा। यह दशा अकसर मांसाहारी मनुष्यों की देखी जाती है। उनका कथन है कि मांसाहार बल को बढ़ाता है। जरा सोचने की बात है कि ऐसे लोग बल और क्रूरता के भेद को भूल जाते हैं। मांसाहार बल को नहीं बढ़ाता है किन्तु क्रूरता बढ़ाता है। हाथी और शेर के भेद को समझना चाहिए। हाथी में जो वास्तविक बल है वह शेर में नहीं है। शेर में क्रूरता है और हाथी में शान्तता है। हाथी अपने शांत स्वभाव और सात्विकता से लड़ाई के मैदान और जहां भी काम पड़ता है जो काम कर सकता है वह शेर नहीं कर सकता है। जो बोझा हाथी वहन कर सकता है, वह शेर नहीं कर सकता। हाथी में वह बल है यदि वह चाहे तो अपनी सूँड़ में शेर को दबाकर टुकड़े-टुकड़े कर सकता है। शेर अपनी क्रूरता और तामसिकता से हाथी पर आक्रमण करता है, पर हाथी जब बिगड़ता है तब शेर की हिम्मत नहीं कि उसका सामना कर सके। सच्ची वीरता और क्रूरता में यही अन्तर है। वीरता का बल जहां जरूरत होती है वहां ही विचारपूर्वक काम में लाया जाता है। क्रूरता तामसिकता स्थान। अस्थान को नहीं देख सकती। अनावश्यक स्थानों पर भी उसका उपयोग हो जाने से अत्याचार हो जाता है।

यह निश्चित बात है कि मांसाहार वीरता को नहीं बढ़ाता। यदि मांसाहार से वीरता बढ़ती तो आज संसार में मांसाहार के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

द्वारा हिजड़े भी बलवान बन जाते किन्तु नहीं, बल और वीरता बढ़ाने में मांसाहार कोई सहायक नहीं ! यह आक्षेप इतिहास और युक्ति से भी निराधार है कि मांसाहार न करने वाले लड़ाई नहीं कर सकते हैं। प्राचीन इतिहास में इसके अनेकों उदाहरण हैं जो निरामिष भोजी थे, उन्होंने मैदानों में-युद्ध में भाग लिया और सफलता प्राप्त की। जैन राजाओं, जैन मन्त्रियों और जैन सेनाधिपतियों के उदाहरण इतिहास के गगन में चमकते तारों के समान देदीप्यमान हैं।

एक और भी बात विचारणीय है। जिस नाम से लोग मांस खाते हैं वह मांस बनता कहां से है ? किसमें से है जिन जानवरों के मांस मांसाहारी खाते हैं वे प्रायः वनस्पति आहारी ही होते हैं। मांसाहारी जानवरों का जैसे शेर बिल्ली कुत्ता आदि का मांस लोग नहीं खाते वनस्पति के आहार से अपने मांस को पुष्ट करने वाले बकरे गाय भैंस बैल आदि का मांस लोग खाते हैं जानवर जिस पदार्थ से अपने शरीर को पुष्ट करते हैं बलशाली बनाते हैं वही पदार्थ तो मनुष्यों को भी बल देता है उस मूल वस्तु को जिसमें बल बढ़ाने की अद्भुत शक्ति रही है उसको न खाकर मांसाहार यह कहां की बुद्धिमत्ता है ?

आश्चर्य और दुख का विषय तो यह है कि जिस युरोप का अनुकरण करके हमारे भारतीय पढ़े लिखे और अन्य लोग दिन प्रतिदिन मांसाहार में अग्रसर हो रहे हैं वही यूरुप आज मांसाहार का बल पूर्वक निषेध कर रहा है। वहां दिन प्रतिदिन वैजीटेरियन सोसायटी बन रही है और वैज्ञानिक दृष्टि से मांसाहार का निषेध मानव जाति के लिए सिद्ध करने जा रहे हैं। हमारे देश का यह दुर्भाग्य है कि शरीर रचना प्राकृतिक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नियम पुण्य पाप को भावना और संस्कृति सभी बातों से मनुष्य का मांसाहार करना निषेधात्मक होते हुये भी भारतवासी मांसाहार करने में अपनी सभ्यता और अपना झूठा बड़प्पन दिखाने को और अनुचित अनुकरण करते हुये आगे बढ़ते जाते हैं किन्तु यह भूलना नहीं चाहिए कि मांसाहार हिंसक वृत्ति को बढ़ाने वाला है और हमारे दिल में जितनी हिंसक वृत्ति बढ़ेगी उतने ही हम सर्वनाश के पास पहुँचते जायँगे और जा रहे हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सच्चे सेवकों का सम्मान

अभी इसी सप्ताह शिवपुरी के एक डाक्टर श्री आनन्दस्वरूप मिश्रा साहब का यहाँ से बबादला हुआ। डा० मिश्रा शिवपुरी में करीब दस वर्ष रहे। जिस दिन उनके स्थानान्तर का समाचार जनता ने निश्चयात्मक सुना, उसी दिन से सारे शहर में एक प्रकार की उदासीनता सी छा गई। उनके विदाई के मान में पार्टियां, सभायें, आभारपत्र आदि जल्से शुरू हुए। आखिरी जल्सा हमारे संस्कृति महाविद्यालय के व्याख्यान हाल में हुआ। वक्ताओं ने उनके गुणों की बड़ी तारीफ की। संस्था की ओर से आभारपत्र दिया गया और एक व्यक्ति की तरफ से चांदी का कास्केट भेंट किया गया। दूसरे दिन जब वे विदा होकर बाजार में से निकले तो सारे बाजार के एक एक दुकानदार ने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। किसी ने नोटों के हार से, किसी ने जरी के हार से, किसी ने नारियल और नकद रकम से सम्मान किया। डाक्टर मिश्रा की बिदाई जनता के लिये असह्य हो रही थी। स्त्री और पुरुष, बालक और वृद्ध सभी की आँखें आंसुओं से तर थीं। दृश्य करुण था। लोगों ने छाती से लगाकर शिवपुरी की सेवामूर्ति को विदा दी। पूछा जा सकता है कि डा० मिश्रा का इतना सम्मान शिवपुरी की जनता ने क्यों किया? इसलिए कि उन्होंने अपनी निर्लोभता, परोपकार वृत्ति, वाणी की मधुरता हृदय की कोमलता, छोटे-बड़ों के प्रति निरपक्षता, गरीबों के प्रति दयालुता आदि उच्च गुणों के द्वारा समस्त जनता के हृदय में स्थान पा लिया था। जो मनुष्य अपने गुणों से दूसरे के हृदय

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में स्थान पाता है वही उनका पूज्य होता है। उनके आदर का पात्र होता है।

स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात भारत के राजाओं का राज्य गया, उनकी सत्ता गई, उनका अधिकार गया और वे सामान्य नागरिक की तरह से आज भारत में रहते हैं। किन्तु उन राजाओं में कुछ ऐसे भी हैं जिनका आदर सम्मान उनकी भूत-काल की प्रजा उसी प्रकार से करती है, जैसे उनके राजत्व काल में करती थी। बल्कि देखा तो यह भी गया है कि उस प्रजा का अपने भूत कालीन पिता के प्रति उस समय से भी अधिक आदर बढ़ा है। सामान्य नागरिक की हैसियत से कहीं भी जाकर वे खड़े होते हैं, तो हजारों की भीड़ बिना बुलाये, इकट्ठी हो जाती है। उनके पैरों को छूते हुये एक प्रकार की स्पर्धा होने लगती है। अपने पूर्व कालीन मालिक के दर्शन करने में लोगों के नेत्र तृप्त नहीं होते, मानों घण्टों तक उनके दर्शन करते करते हर्ष से आंसू बहाते रहते हैं। किसी सभा में गड़बड़ी होने पर बड़ा से बड़ा अधिकारी या सैकड़ों डण्डेधारी पुलिस के जवान तो शान्त नहीं कर सकते वह कार्य सत्ता को त्यागा हुआ किन्तु जिसने जनता की सेवा करके जनता के हृदयों में स्थान प्राप्त किया है, उसके इशारे मात्र से सारी अशांति रफू-चक्कर हो जाती है और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जनता कुर्सी, टेबलों, सोने-चाँदी के सिंहासनों या मखमल जरी के गादी तकियों के स्थानों की अपेक्षा अपने हृदय के स्थान को बहुत बड़े महत्व का समझती है। उस स्थान पर जो विराजता है वही उसका मालिक है। वही उसका राजा है, वही उसका आराध्य है और वही उसका पूज्य है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इससे विपरीत एक उदाहरण मुझे याद आता है। एक शहर में मेरा चातुर्मास था। वहां के एक बड़े आदमी की मृत्यु हो गई। वह दो दृष्टि से बड़ा था–सत्ता से बड़ा अधिकारी था पैसे से करोड़ाधिपति था। किन्तु जिस दिन वह मरा लोगों ने श्रीफल वगैरह मिठाइयां उड़ाईं, आनन्द मनाया। मैंने कुछ लोगों से पूछा भाई यह सब क्या हो रहा है? उत्तर मिला महाराज हमारे गाँव का पाप गया। उसने सत्ता के बल पर प्रजा को सताने में कोई कसर नहीं रक्खी और धन के बल पर कोई पाप करने में कमी नहीं रक्खी। किसी के प्रति उसने न हमदर्दी रक्खी न प्रेम किया। मुख में न मधुरता थी न आचरण में पवित्रता। गाँव का पाप गया। सारे लोग खुशियां मनाते हुए उसके पीछे थूक रहे थे। मानव प्रकृति के इस प्रकार भिन्न भिन्न उदाहरणों को देखते हुये हमें मनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत कुछ सोचने का अवसर मिल जाता है। डा० मिश्रा जी को हमारी संस्था की तरफ से आभारपत्र दिया गया, उस समय सभापति के स्थान से मुझे जो दो शब्द कहने का अवसर मिला उसमें मैंने भला करने वाली और बुरा करने वाली ऐसी दो प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया था। मैंने कहा था संसार में मनुष्य जन्म पाकर और शारीरिक, मानसिक बौद्धिक या ऐसी ही अन्य प्रकार की शक्तियों को प्राप्त करने वाले मनुष्य अपनी शक्तियों का सदुपयोग दूसरों का भला करके और दुरुपयोग करते हैं दूसरों का बुरा करके। भला करने वाले मनुष्यों के तीन भेद हैं। वे ये हैं:—

१—अपना नुकसान करके भी दूसरों का भला करना।

२—अपनी हानि नहीं पहुँचाते हुये दूसरे का भला करना।

३—अपनी स्वार्थ सिद्धि पूर्वक दूसरों का भला करना।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसी प्रकार बुरा करने वालों के भी तीन भेद हैं:—

१—अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का बुरा करना।
२—स्वार्थ नहीं रहते हुये भी दूसरों का बुरा करना।
३—अपना नुकसान उठाकर भी दूसरों का बुरा करना।

इस प्रकार भला और बुरा करने वाले मनुष्य संसार में पाये जाते हैं। भला करने वाले लोकप्रिय होते हैं और बुरा करने वाले लोगों की दृष्टि में गिर जाते हैं। भारतवर्ष की संस्कृति हमेशा दूसरों का भला करने की ओर रही है। भारत का साधारण संस्कारी मनुष्य भी 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेशां न समाचरेत्' इस प्रतीक को मानता आया है। जो हमें इष्ट नहीं है, उसका व्यवहार दूसरों से नहीं करना, इसी सिद्धान्त पर भारतीय मनुष्यों की मनोभावना निर्मित हुई है।

किन्तु जिस दिन से पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय मनुष्यों पर जोर किया अथवा यों कहना चाहिये कि भारतीय प्रजा ने पाश्चात्य संस्कृति को अपनाया तब से उनकी परोपकार वृत्ति की संस्कृति का स्थान स्वार्थ वृत्ति की संस्कृति ने ले लिया। अर्थात् जहाँ अपना नुकसान करके भी दूसरों का भला करने की वृत्ति हमारे रोम रोम में बसी हुई थी, वहां अपनी स्वार्थ साधना के लिए दूसरों का संहार करना हमारा कर्तव्य है इस भावना ने स्थान प्राप्त कर लिया।

और जब से राजनीति का क्षेत्र राजशासन को छोड़कर सर्वव्यापी बन गया अर्थात् राजनीति प्रत्येक बालक-वृद्ध स्त्री-पुरुष साधू-सन्यासी सभी में फैल गई, तब से तो 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' भावना का दर्शन भी दुर्लभ हो गया है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

परोपकार और सेवा का नाम मात्र रह गया। किन्तु यह शिकारी की शिकार पकड़ने की मीठी बोली के सिवाय और क्या है। आज सेवकों बल्कि सेवा मूर्तियों की उत्पत्ति बरसात के दिनों में बिजली या गैस की बत्ती के नीचे उत्पन्न होने वाले जीवों की उत्पत्ति के समान हो रही है। और वे सेवा मूर्तियाँ अपने को देश के उद्धारक, समाज के दुःख-नाशक बतलाते हैं। किन्तु आज उनके प्रति जनता में जो घृणा, तिरस्कार देखा जाता है, इसका भी तो कुछ कारण होना चाहिये। सच्चे सेवक वे हैं, जो अपनी शुद्ध सेवाओं से दूसरों के हृदय में स्थान प्राप्त करते हैं। अपना नुकसान उठाकर के भी दूसरों की सेवा करते हैं। कदाचित नुकसान न करते हुये दूसरों की सेवा करते हों और अपनी स्वार्थ सिद्धि के साथ दूसरों की सेवा करते हों, यहाँ तक भी गनीमत समझी जानी चाहिये, किन्तु दूसरों का भला करना तो दूर रहा, केवल अपना स्वार्थ साधने के लिए सेवा के नारे लगाना जनता से कहाँ तक छिपा रह सकता है।

आज जिन सेवा-मूर्तियों से भारत खद-बद हो रहा है, उनमें से कुछ लोगों के काम तो निर्दोष से निर्दोष, पवित्र से पवित्र, मनुष्यों की बुराइयां करके अपना प्रभाव स्थापित करने का देखा जाता है कुछ लोगों का काम एक समझदार बालक की सी योग्यता रखते हुये बड़े बड़े विद्वान, वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध लोगों को भी धौंस बताकर अपना प्रभाव स्थापित करने का होता है। ऐसी सेवा मूर्तियां जब कहीं इकट्ठी होती हैं और अपनी अपनी सेवाओं के नारे लगाने की स्पर्धा करती हैं, उस समय उनकी सेवा का मंगलाचरण एक-दूसरे पर आक्षेपों से शुरू होकर गाली-गलौज, हाथा-पाई, कोशा-कोशी, मुष्ठा-मुष्ठी, लट्ठा-लट्ठी और आखिरी खून-खराबी में आता है। सेवा जैसे

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पवित्र कार्य को जिन्होंने अपने जीवन में अपना लिया हो, उनकी ऐसी प्रवृतियां कभी हो सकती हैं क्या ? क्या सेवा का क्षेत्र इतना गंदा और मलीन है कि जिससे मानव दानव बनजाय ? सेवा जिस के हृदय में बसी होती है वह पूरा सहन-शील बनता है, वह दया और दाक्षिण्यवाला बनता है। उसके हृदय में पवित्रता और उसकी वाणी में मधुरता और उसके आचार में आदर्श ओत-प्रोत हो जाता है। वह लोभी नहीं रहता, वह स्वार्थान्ध नहीं बनता, वह जिद्दी नहीं बनता, वह अभिमानी नहीं बनता। उसका एक ही लक्ष्य रहता है और वह यही कि मैं किसी भी प्रकार दूसरों का भला करूं—मैं किसी प्रकार दूसरों के दुःखों को हलका करने का प्रयत्न करूं। आज सच्चे सेवकों के बीच में ऐसे लोग घुस गये हैं, जिनका समाज में कोई स्थान नहीं, जिनमें कोई योग्ता नहीं, अनुभव नहीं।

सेवा का क्षेत्र महान और पवित्र है। इस पवित्र क्षेत्रको अपनाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह पहिले अपना जीवन शुद्ध बनाकर ही इस पवित्र क्षेत्र में पदार्पण करे। आज के समय में दंभ चल नहीं सकता, सत्ताके आगे जनता की शान्तता भले ही न चले, किन्तु कोई दंभी सेवक जनता के हृदय में तो स्थान नहीं पा सकेगा, यह बात तो निर्विवाद है। और जहां दंभ है वहां आत्म कल्याण भी नहीं है। जनता के हृदय में स्थान पानेवाले के लिये समय आने पर जनता आंसुओं से घड़े भरती है। और जनता को सताकर अपनी सत्ता जमाने वाले दंभी सेवकों के पीछे जनता थूकसे घड़ा भरती है। इसलिये जनता की सेवा करने वाले, निर्लोभिता, निष्कपटता और निर्मलतापूर्वक सच्ची सेवा करें, इसीमें उनका और जनता का कल्याण है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हमारी शिक्षण संस्थाएं

किसी भी देश, राष्ट्र, धर्म, समाज की उन्नति का आधार शिक्षा पर अवलम्बित है। व्यक्ति के जीवन के विकास का आधार भी शिक्षा है। यही कारण है कि मानव-समाज में शिक्षा की प्रणाली समाज व्यवस्था के साथ ही प्रचलित हुई। परिवर्तनशील संसार के नियमानुसार समय-समय पर शिक्षण-प्रणाली में परिवर्तन होता रहा किन्तु शिक्षण का हेतु तो एक ही रहा।

समाज और शासन इन दोनों का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक दूसरे का प्रभाव एक दूसरे के ऊपर पड़े बिना नहीं रहता। खास करके शासन का प्रभाव तो समाज के ऊपर अवश्य पड़ता है। जिस समय जिसका शासन होता है, उस समय उसकी संस्कृति, रीति व रिवाज, भाषा, रहन-सहन, सभी का प्रभाव समाज पर पड़ता है। यही कारण है कि आज देश की प्रांतीय-भाषाओं में इतना मिश्रण हो गया है कि एक प्रांत की शुद्ध-भाषा के शब्द उसमें कितने हैं और अन्य भाषा के कितने हैं, यह निकालना मुश्किल हो गया है।

इसी प्रकार शिक्षण का प्रभाव भी समय-समय पर पड़ा। सबसे अन्तिम समय अङ्गरेजी-शासन का आया, जो हमारे ही सामने गुजर चुका है। हमारी भारतीय शिक्षण-प्रणाली और अङ्गरेजों की शिक्षा प्रणाली में कितना अन्तर था, यह दिखलाने की आवश्यकता नहीं। 'शिक्षण का हेतु जीवन विकास' यह मैं ऊपर बता चुका हूँ। हेतु एक रहते हुए भी, अंग्रेजी शिक्षण-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रणाली ने हमारी संस्कृति से हमको बहुत दूर हटा दिया। शिक्षण-प्रणाली का प्रभाव जीवन के ऊपर पड़े बिना नहीं रहता।

यही कारण है कि अँग्रेजी शिक्षण-प्रणाली ने, हमारे जीवन की सादगी का स्थान साहबी को दिया। बड़ों के प्रति पूज्य बुद्धि का स्थान अश्रद्धा को दिया। पाप, पुण्य, ईश्वर की भावना का स्थान नास्तिकता को दिया। आध्यात्मिक-भावनाओं का स्थान जड़वाद को दिया। नम्रता का स्थान उच्छृङ्खलता को दिया। अहिंसकवृत्ति का स्थान हिंसकवृत्ति को दिया। परोपकार का स्थान स्वार्थान्धता में परिणित किया। देव, गुरू, धर्म के प्रति हमारी जो श्रद्धा थी, वह श्रद्धा मिटा दी। सक्षेप में कहा जाय तो "सा विद्या या विमुक्तये" "मातृ देवोभव" "पितृ देवोभव", "आचार्य देवो भव", "अतिथि देवो भव", "धर्म चर", "सत्यं-वद" इत्यादि शिक्षण के परिणामों से हमें सदा वंचित ही कर दिया।

उपर्युक्त परिणाम को महात्मा गांधी ने अच्छी तरह से समझ लिया था। और इसीलिए वे आखरी दम तक इसकी तरफ जनता का और नेताओं का ध्यान आकर्षित करते रहे। किन्तु अङ्गरेजों की दी हुई देन के जो वारसदार बने हैं उनको महात्मा जी की ये बातें, शायद गले में नहीं उतरीं। और यही कारण है कि अङ्गरेजों के जाने पर भी हमारा साहबी ठाठ, हमारी हिंसकवृत्ति, हमारी अङ्गरेजी भाषा का मोह आदि ज्यों का त्यों बना रहा है। किसी बात में, किसी अंश में बाह्य परि-वर्तन देखा भी जाता है किन्तु जीवन की गहराई में अङ्गरेजों ने जो संस्कार हमें ओत-प्रोत कर दिए हैं, वे तो हमसे दूर नहीं होने।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ऐसी बातों में शिक्षण-प्रणाली भी एक है। यह सद्भाग्य का चिह्न है कि "वर्तमान शिक्षण-प्रणाली में परिवर्तन करने की आवश्यकता है" ऐसे विचार हमारे कुछ नेता प्रकट कर रहे हैं किन्तु उसके लिए जो प्रयत्न करना चाहिए, वह शासन की ओर से नहीं होता। बल्कि कभी-कभी तो इससे विपरीत ही प्रयत्न होता है, अर्थात् ज्यादा खराबियां उत्पन्न करने के प्रयत्न होते हों, ऐसा प्रतिभास होता है।

यह बात आम तौर से कही जाती है, खास करके शासनाधिकारियों की तरफ से भी कही जाती है कि "शासन की तरफ से चलने वाली शिक्षण-संस्थाओं में बालक और युवकों के 'चरित्र निर्माण' का कोई प्रयत्न नहीं होता" वे समझते भी हैं कि "शासन की ओर से चलने वाली शिक्षण-संस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का कोई नेता नहीं है, कोई गुरु नहीं है, कोई प्रेरक नहीं है। वे चार-पांच घण्टे शिक्षकों के सानिध्य में रहते हैं किन्तु इतने समय में कई शिक्षकों के दर्शन हो जाते हैं। न शिक्षक विद्यार्थियों के प्रति अपना कुछ कर्तव्य समझते हैं, न विद्यार्थी उनको अपना गुरु समझते हैं, बल्कि बड़ी आयु के विद्यार्थी तो उनको शासन के एक गुलाम समझते हैं और अब तो प्रजातन्त्रीय-शासन में खुद के भी गुलाम समझते हैं। दूसरी तरफ से कल के ही विद्यार्थी आज शिक्षक हुए हैं, इसलिये जो बुराइयाँ थीं, वे बुराइयाँ दूर करने के पहिले ही शिक्षक बने हैं। इसका परिणाम यह आता है कि एक गुरु की हैसियत से उनके सदाचार का जो प्रभाव पड़ना चाहिये, उससे विपरीत ही पड़ता है। इतने से यह बात सीमित नहीं रहती। शिक्षक पैसों की लालच में आ कर के ट्यूशनों के द्वारा एवं परीक्षा में पास करा देने के सौदे के द्वारा एक प्रकार की विद्यार्थियों में चोरी आदि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के दुर्गुण भी डालते हैं। प्रायः बीड़ी, सिगरेट, सिनेमा आदि व्यसनों से तो शायद ही कोई भाग्यशाली शिक्षक बचा होगा। उन सारी बुराइयों का प्रभाव भी विद्यार्थियों पर पड़े बिना नहीं रहता।

एक तरफ 'चरित्र-निर्माण' से नीचे गिरने वाली बुराइयाँ शालाओं में से ही मिलती रहती हैं। दूसरी तरफ से जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, अङ्गरेजों के जमाने में 'कला' के नाम से हमारे जीवन में ऐसी बुराइयाँ ओत-प्रोत हो गई हैं, जो वस्तुतः जीवनस्तर को नीचे गिराने वाली होते हुए भी, उसको हम उन्नति का साधन मान रहे हैं। जैसे—सिनेमा, सह-शिक्षण, युवती छोकरियों के नृत्य शृङ्गार से भरी हुई नवल-कथाएं, शृङ्गार-युक्त चित्र इत्यादि।

"प्रवृत्ति वृत्ति की द्योतक होती है," ऐसा एक सिद्धांत है। प्रवृत्ति पर से मानव की वृत्तियों का अनुमान किया जाता है। उपर्युक्त बातों से आज मानव समाज की पवित्रता का कितना नाश हो रहा है, यह जानते हुए भी, कला के नाम से किंवा देश को उन्नति के बहाने से इसका प्रचार करना, इसको उत्तेजना देना यह कहाँ तक उचित है? यह समझदारों के लिये समझना कोई कठिन बात नहीं है। बेशक सिनेमा जैसी चीज को मैं प्रचार का साधन मानता हूं और जैसा कि मैं पहले अपने एक लेख में लिख चुका हूं, हमारी संस्कृति, हमारी आध्यात्मिकता, हमारी चरित्र-निर्माण करने वाली शिक्षण-प्रणाली इत्यादि बातों के लिए साधन का उपयोग किया जाय, तो यही साधन देश के लिए—जनकल्याण के लिए आशीर्वाद रूप हो सकता है परन्तु जब तक इस साधन का उपयोग जीवन को नीचे गिराने वाली फिल्मों के प्रचार में किया जाता है, तब तक यह व्यवसाय देश के लिए शाप रूप हो रहा है और होता रहेगा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसी प्रकार जवानी में प्रवेश करने के समय से 'सहशिक्षण' का कितना बुरा परिणाम आज तक आया है, यह कौन नहीं जानता। बड़े बड़े महापुरुषों के आश्रम भी इस 'सहवास' और 'सहशिक्षण' से टूट गए, गिर गए। सहशिक्षण की शालाओं में कैसे कैसे किस्से बनते हैं, यह किससे अविदित है? हाँ, व्यभिचार में बुराई न समझने वाले, चाहे किसी की लड़की को चाहे कोई उठा ले जाए, उसको अनुचित नहीं समझने वाले, अंग्रेजों की नकल में ही उन्नति समझने वाले और भारतीय-संस्कृति की मजाक उड़ाने वाले महानुभाव ऐसी बातों को बुरा न समझें, तो यह और बात है। किन्तु भारतीय-संस्कृति पर जिसको अभिमान है, जो पाप को पाप समझते, हैं भलाई बुराई का जिसके सामने प्रश्न है, वे ऐसी बातों कभी पसन्द नहीं कर सकते। सत्ता के बल पर, मनुष्य चाहे कुछ करले किन्तु जिसके ऊपर सत्ता का प्रयोग किया जाता हो, उसकी भावना को देखना भी एक जरूरी चीज है।

कहने का तात्पर्य यह है कि शासकीय शिक्षण-संस्थाओं की शिक्षण-प्रणाली में परिवर्तन करने की सबकी भावना होते हुए भी 'चरित्र-निर्माण' के लिए जो परिवर्तन होना आवश्यक है, वह नहीं होता अथवा विचार भिन्नताओं के कारण से नहीं किया जाता है।

दूसरा प्रश्न शिक्षकों का है। योग्य शिक्षकों के अभाव से भी शिक्षण-संस्थाएँ सफल नहीं होती। हालांकि, शासन की ओर से योग्य-शिक्षक उत्पन्न करने के लिए 'टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज' खोले जा रहे हैं किन्तु पुस्तकों का पाठ्यक्रम पूरा करने के अतिरिक्त उन शिक्षकों में चरित्र-योग्यता का क्या नियम रखा जाता है, यह मालूम नहीं है? पाठ्यक्रम कितना भी ऊँचा रख

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कर कैसी भी ऊँची डिग्रियाँ दी जायँ किन्तु जब तक वे शिक्षक स्वयं सदाचारी, निर्लोभी, निर्व्यसनी न होंगे, तब तक वे विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण में उपयोगी नहीं हो सकेंगे। यह निर्विवाद सिद्ध बात है।

दूसरे प्रकार की शिक्षण-संस्थाएँ हैं—स्वतन्त्र संस्था। जो प्रजाकीय संस्थाएं कही जाती हैं। ऐसी संस्थाओं का प्रारम्भ प्रायः आर्य समाज के गुरुकुलों से हुआ। बाद में अन्य लोगों ने अनुकरण किया। भारतवर्ष में प्राचीन समय में जो 'आश्रम' अथवा 'गुरुकुल' चलते थे, उसी का अनुकरण था—है। किन्तु समय के प्रभाव से इसमें नवीनता का भी मिश्रण हुआ है। इतना होते हुए भी, ऐसी संस्थाओं की शिक्षण-प्रणाली, बालकों का रहन-सहन, दिनचर्या आदि इस प्रकार से रखे जाते हैं, जिससे बालकों के 'चरित्र-निर्माण' में वर्तमान समय को देखते हुए, काफी सफलता मिलती है। ऐसी संस्थाएं एक या दो चार व्यक्ति की भावनाओं में से स्थापित होती हैं। और प्रायः देखा जाता है कि एक आध व्यक्ति की भावना से उत्पन्न होने वाले कार्य में प्रगति अच्छी होती है। क्योंकि उसको उस संस्था के ऊपर ममत्व रहता है और हर किसी प्रकार से उसको प्रगतिशील देखने की भावना रखता है। भारत सरकार के खाद्य और कृषि-मन्त्री श्री के०एम० मुन्शी ने, शिवपुरी के श्रीवास्तव प्रकाशक मण्डल—संस्कृत महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव में सभापति स्थान से प्रवचन करते हुए कहा था—

"देश में स्वतन्त्र शिक्षण-संस्थाओं की प्रवृत्ति प्रणालियों द्वारा चलने की है और वे शिक्षा सम्बन्धी प्रयोगों में स्वयं प्रगति करने में असमर्थ हैं। निजी संस्थाएँ सदैव उन्नति के पथ तथा अधिक प्रगतिपूर्ण विधियों से प्रकाश डाल सकती हैं। इस प्रकार की संस्थाओं को स्थापित करना चाहिये।"

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ऐसी स्वतन्त्र संस्थाएं—गुरुकुल आदि में प्रायः संस्कृत का प्राधान्य रहता आया है। क्योंकि उनकी स्थापना इस भावना से ही होती है कि "संस्कृत-भाषा ही एक ऐसी भाषा है, जो हमारी संस्कृति का रक्षण कर सकती है।"

हमारे राष्ट्रपति श्रीमान डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी महोदय ने "संस्कृत के विकसित वाङ्मय के अध्ययन की आवश्यकता" शीर्षक एक लेख में लिखा है—

"मानवजाति के सांस्कृतिक विकास का चित्र तो संस्कृत वाङ्मय की सहायता के बिना बनाया जा सकता ही नहीं।"

और भी आपने कहा है—

"मैं जानता हूं कि—संस्कृत का अध्ययन, केवल हमारे लिए ही नहीं, बल्कि संसार की समस्याओं को सुलझाने में भी सहायक हो सकता है। हमारे शिक्षालयों में इसे काफी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। जो संस्कृत नहीं जानते, वह उन्हीं बातों पर अधिक ध्यान देते हैं, जो पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं।"

—'विक्रम' पौष २००८

कई वर्षों से संस्कृत का पठन-पाठन कम हो गया है, जो हमारे देश की सर्वव्यापी राष्ट्रभाषा थी, वह निश्चित थोडे ब्राह्मण पण्डितों की ही भाषा रह गई। और अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व के कारण, वह, मातृभाषा' कही जाने लगी, न उसको राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिला, न जनता की ओर से। जनता की ओर से इसलिए नहीं मिला कि संस्कृत पढने वाला श्रीमंत तो नहीं बन सकता था।

और यही कारण था और किसी हद तक अब भी है कि ऐसी संस्थाओं से जैसे विद्यार्थी कम लाभ उठाते हैं, वैसे जनता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अपनी निजी भावना से आर्थिक-सहायता कम देती है। जहां जडवाद की उपासना का साम्राज्य फैला हो वहां संस्कृति, साहित्य, आध्यात्म, मानवता, चरित्रनिर्माण इत्यादि बातों की तरफ कौन ध्यान देता है ? और यही कारण था और है कि केवल संस्कृत पढने वाली शिक्षण-संस्थाओं में भी समय को देख कर पाठ्यक्रम में परिवर्तन करना पड़ा। अर्थात संस्कृत के साथ हिन्दी, अँग्रेजी आदि भाषाएँ रख कर उसका भी अध्ययन कराया जाने लगा, बल्कि किसी अंश में ऐसी संस्थाओं में उद्योग का भी प्रबन्ध किया जाने लगा।

इतना होते हुए भी, यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि— ऐसी संस्थाओं में 'चरित्र-निर्माण' का उद्देश्य जितना सफल हो सकता है, उतना शासकीय-संस्थाओं में नहीं। इसके कई कारण हैं, जिनमें से कुछ ये हैं—

(१) प्रायः ऐसी संस्थाएँ, जो प्राचीन आश्रमों के अनुकरण रूप स्थापित होती हैं, उसके लिए स्थान खास पसन्दगी का निश्चित किया जाता है। जहां आजकल का दूषित वातावरण न हो।

(२) ऐसी संस्थाओं का नेतृत्व प्रायः एक व्यक्ति करता है, जिसके आचरण का प्रभाव बालकों पर पड़ता है।

(३) ऐसी संस्थाओं में छात्रालय का रखना अनिवार्य होता है। क्योंकि इनमें प्रायः गरीब और मध्यम-वर्ग के लोग ही आते हैं। एक स्थान या एक प्रान्त के नहीं, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्तों के दूर-दूर के आते हैं। इनके लिए मासिक निश्चित छात्र वृत्ति देकर या स्वतन्त्र भोजनालय, स्थान, रोशनी आदि साधनों को दे करके भी छात्रालय का रखना अनिवार्य हो जाता है। जहाँ इस प्रकार बाहर के विद्यार्थी आते हों, ऐसी शासकीय

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शिक्षा-संस्थाओं में भी यह अनुकूलता करनी ही पड़ती है। जैसे फारेस्ट स्कूल, व्हेटरनरी स्कूल, टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल आदि।

(४) ऐसी स्वतन्त्र संस्थाओं की शिक्षण-प्रणाली में भी दूषित वातावरण का अभाव होता है।

(५) अक्सर ऐसी संस्थाओं में शिक्षक भी वे ही जाते हैं या रखे जाते हैं जो अपनी जवाबदारी का कुछ ख्याल रखते हों।

(६) विद्यार्थियों की दिनचर्या भी खास विशेषता रखती है।

इत्यादि कई कारण हैं, जिन कारणों से विद्यार्थियों का 'चरित्र-निर्माण' आसान हो जाता है।

शिक्षण यह शिक्षण है, जिससे मनुष्य अपना 'चरित्र-निर्माण' करे। यह सिद्धान्त यदि सही है, तो जैसा कि श्री मुन्शी ने कहा है—भारतवर्ष में ऐसी संस्थाओं की अति आवश्यकता है।

ऐसी स्वतन्त्र शिक्षण-संस्थाओं के भी दो प्रकार हैं, कुछ ऐसी संस्थाएं स्थापित होती हैं, जो होती हैं एक या दो व्यक्ति की भावनाओं से, किन्तु स्थापन करने वालों का प्रधान लक्ष्य निजी स्वार्थ साधने का होता है, केवल पैसा पैदा करने का होता है। अर्थात् ऐसे लोग अन्य व्यवसायों द्वारा प्रायः अपने-अपने स्वार्थ से निजी सम्पत्ति को बढ़ाते हुए कार्य करते हैं। उसी प्रकार संस्थाओं के द्वारा निजी सम्पत्ति बढ़ाने का एक लक्ष्य होता है। प्रायः देखा गया है कि ऐसी स्वार्थ-साधक-संस्थाओं के नेता उन बालकों के 'चरित्र-निर्माण' पर कोई ध्यान नहीं देते। वे यह दिखा कर जनता को और शासकों को प्रसन्न कर पैसा बटोरते

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हैं, 'कि हमने इतने मेट्रिक पास किए,' 'इतने मिडिल पास किए' इत्यादि। ऐसी संस्थाएँ समस्त विद्यार्थियों से जैसा पूरा खर्च लेती हैं वैसे जनता और शासन से भी किसी न किसी निमित्त से काफी सहायता लेकर स्वयं मालदार बनती हैं। मेरा नम्र मत है कि ऐसी संस्थाएँ किसी देश के लिये लाभदायक नहीं। क्योंकि केवल शिक्षण देने का कार्य तो शासन की ओर से होता ही है। ऐसी स्वतन्त्र संस्थाओं का कोई महत्व हो तो उसकी विशेषताओं में है। और वह विशेषता चरित्र-निर्माण की एवं किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों की स्वार्थरहितता की है। यदि ये बातें स्वतन्त्र संस्थाओं में न हों और केवल व्यवसाय रूप संस्थाएं चलाई जाती हों तो वह शासन का बोझा कम नहीं करती हैं, किन्तु विघ्नभूत है।

जो स्वतन्त्र संस्थाएँ किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों के निजी स्वार्थ से रहित केवल परोपकारार्थ और खास करके गरीब और मध्यवर्ग के लोगों के लिए समाज की ओर से चलाई जाती हो ऐसी संस्थाओं के प्रति शासन को विशेष ध्यान देना आवश्यक है। क्योंकि शासन के सहकार से ही वह अधिक उन्नतिशील हो सकती है।

शासन की ओर से जैसे अन्य विभागों में, वैसे शिक्षा विभाग में भी नियम बनते हैं, नियमों का बनाना अनिवार्य है। नियमों से ही शासन चलता है किन्तु उन नियमों के बनाने के समय ऐसी स्वतन्त्र संस्थाओं की उपयोगिता-अनुपयोगिता का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। शिक्षण का प्रधान लक्ष्य रहते हुए शिक्षण प्रणाली, उसके हेतु, साधन की आवश्यकता इत्यादि बातें सोचना बहुत आवश्यक हैं। शासकीय शिक्षण संस्थाएँ केवल शिक्षण का कार्य करती हैं जब कि गुरुकुल पद्धति

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

से चलने वाली संस्थाएं शिक्षण का कार्य करते हुए भी सर्व-जनोपयोगी चरित्र निर्माण का प्रशंसनीय कार्य करती हैं। इनमें दूर-दूर के लोग भी लाभ लेते हैं। इन बातों को देखकर ऐसी संस्थाओं को सहायता में विवेक बुद्धि का उपयोग करना शासकों के लिए आवश्यक है। संक्षेप में कहा जाय तो शासन की ओर से शिक्षण संस्थाओं को सहायता देने के नियमों में उपयोगिता अनुपयोगिता का ध्यान जितना रखना जरूरी है, वैसे स्वार्थ के लिए और परमार्थ के लिए चलने वाली संस्थाओं का भेद समझना भी आवश्यक है।

एक बात मुझे और भी कहनी है। शासन की ओर से शिक्षण प्रणाली में परिवर्तन करने का प्रयत्न आरम्भ हुआ है यह देश के लिए सद्भाग्य की निशानी है। मैं इस प्रसङ्ग पर अनुरोध करूँगा कि शासन हमारे बालक और युवकों के चरित्र निर्माण में मानता है, तो एक साथ सर्वत्र नहीं, तो कम से कम किसी एक स्थान में एक प्रयोग के तौर पर प्राचीन और अर्वाचीन पद्धति के मिश्रणपूर्वक 'गुरुकुल' पद्धति की एक शिक्षण संस्था स्थापन करे, जिस में ५०० विद्यार्थियों के लिए स्थान रखा जाय। उसका पाठ्यक्रम स्वतन्त्र बनाया जाय। उसका एक निःस्वार्थ, निर्लोभी, अपरिग्रही नेता निश्चित किया जाय। शिक्षकों की नियुक्ति उन्हीं के ऊपर रखी जाए। शुद्ध वातावरण में यह आश्रम रखा जाए। अधिकारियों की कोई दखलगिरी इसके ऊपर न रखी जाए। बेशक केवल सरकार के व्यय से ही ऐसी संस्था चलाई जाने के कारण आर्थिक आय-व्यय की प्रामाणिकता की देख-रेख सरकार अवश्य रखे।

प्रयोग के तौर पर यदि सरकार ऐसी संस्था चलाये और कम से कम १० वर्ष का इसका अनुभव करके देखें कि इसका

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

क्या नतीजा आता है ? और यदि इसमें सफलता मिले तो ऐसी अन्य संस्थाएं स्थापन करे और यह शिक्षा प्रणाली अपनावें जैसा कि मैं अभी एक लेख में लिख चुका हूं। जब कि हमारे देश का नव-निर्माण हो रहा है उस समय शासन अधिकारियों को चाहिए कि केवल अपने ही अनुभव से एक दृष्टिकोण से नहीं, किन्तु भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से भी शिक्षण प्रणालियों को देखकर उसके प्रयोग आरम्भ करना चाहिए।

मुझे आशा है जनता और शासक शिक्षण जैसे महत्व के प्रश्न को बहुत विचार पूर्वक हल करने का प्रयत्न संयुक्त बल से करेंगे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सर्व व्यापी उच्छृंखलता

इस समय विद्यार्थियों में उच्छृंखलता बहुत बढ़ जाने की आवाज सर्वत्र सुनाई देती है। कभी कभी तो बिना प्रयोजन उच्छृंखलता की मात्रा इतनी बढ़ी हुई देखी जाती है कि दुःख और आश्चर्य होता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मानवता ही उन में नष्ट हो गई है।

कुछ वर्षों पहिले की बात है, गुजरात के एक शहर में मेरी व्याख्यानमाला चल रही थी, वहां के कालेज के कुछ प्रोफेसर मेरे पास आये। कालेज में एक व्याख्यान देने की विनती की। व्याख्यान के दिन, ठीक समय कुछ मिनटों पहिले कुछ सज्जनों के साथ मैं गया। मैंनेकालेज के फाटक में प्रवेश किया, उस समय घंटी बजी और विद्यार्थियों को छुट्टी मिली। मैंने देखा बड़ी बड़ी उमर के विद्यार्थी मुझे देख कर सीटियां बजाने लगे, पैरों से धूल उड़ाने लगे. और अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करने लगे। कुछ प्रोफसर मुझे व्याख्यान भवन में ले गये। भवन विद्यार्थियों से खचाखच भर गया। प्रिंसिपल और प्रोफेसर मेरा परिचय देने को खड़े हुए। वे बोलते गये, सारे भवन में कोलाहल मचा रहा। पैरों का पटकना, तालियां पीटना, सीटियां बजाना चालू रहा। मुझे उस दिन व्याख्यान में जो कहना था, उसके विचार आना तो दूर, वर्तमान समय के विद्यार्थियों के जीवन के ही विचार आने लगे। साथ साथ मुझे भय भी होने लगा कि जब मैं बोलने लगूंगा, तब ये लोग मेरी दशा कैसी करेंगे? प्रोफेसर ने उसी कोलाहल में अपना बोलना समाप्त किया और मुझे बोलने के लिये प्रिंसिपल ने विनती की। मैं क्या बोलू? किसके

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आगे बोलूं क्यों बोलू ? यही विचार मेरे मस्तिष्क में दौड़ने लगे, गुरु-देव का स्मरण कर और सारी शक्तियों को एकत्रित कर, मैं खड़ा हुआ। मेरी पद्धति के अनुसार मंगलाचरण मैं पूरा ही नहीं कर पाया कि कोलाहल शुरू हुआ। वही सीटियां, वही हूँ हां, वही बूट का पटकना आदि होने लगा। मैं चुप रहा, करीब ५-७ मिनट मंच के अगले भाग पर टहलता रहा, एक अक्षर भी न बोला। थोड़ी देर में सारे हाल में सन्नाटा छा गया, एक भी आवाज नहीं, सब लोग चुप हो गये, मैंने धीरे से कहा कि आप चुप क्यों हो गये ? आप अपनी क्रिया चालू रखिये, मैं तो सीखने आया हूँ, पढ़ने को आया हूं, मैट्रिक, इंटर, बी० ए०, एम० ए० होने तक जो कुछ आप पढ़े हों, मुझे पढ़ाइये, आपकी विद्या का मुझे परिचय कराइये, आपकी शक्तियों का मुझे पानी दिखलाइये, आपने मानवता और संस्कृति के संस्कार अपने जीवन में कितने उतारे हैं, यह दिखाइये, मैं कुछ कहना नहीं चाहता, आप जैसे विद्वानों की विद्वत्ता का लाभ उठाने आया हूँ। गुरुदेव ने मेरे हृदय की करुणा का प्रभाव उन विद्यार्थियों के ऊपर डाला, सब चुप हो गये। सभा में से आवाजें उठीं, 'आप अपना व्याख्यान शुरू करिये, हम शांति के साथ सुनने को तैयार हैं," सवा घण्टे तक मैं बोलता रहा, एक भी आवाज नहीं उठी, बहुत से लोग अपनी डायरियां निकाल कर नोट करने लगे, व्याख्यान की समाप्ति के बाद और व्याख्यानों की मांग की। अस्तु।

मैं यहां कहना चाहता हूं कि बिना प्रयोजन मेरे जैसे एक साधु का, जो उनका अतिथि होकर गया था, अपमान करने में उचित अनुचित का कोई ख्याल उनको नहीं था, कभी कभी वर्तमान पत्रों में पढ़ कर अत्यन्त दुख होता है कि किसी एक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विद्यार्थी की इच्छा की पूर्ति यदि शिक्षक नहीं करता है, तो दो चार विद्यार्थी मिलकर न केवल वर्तमान पत्रों में ही उसकी बुराई करने से संतोष मानते हैं, बल्कि उसकी जान लेने तक का भी प्रयत्न कर छूटते हैं। कहा जाता है कि यह उच्छृङ्खलता विद्यार्थियों-युवकों में है, परन्तु मेरे ख्याल से यह हवा सर्वत्र-सर्वव्यापी फैली हुई है, उसके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये जाते हैं, जिससे ऐसा विषैला वातावरण दूर हो और लोग सच्ची मानवता और सच्चे शिक्षित होने को सार्थक करें।

परन्तु इस प्रयत्न में एक बात की मुझे न्यूनता दिखती है और वह यह कि सर्वव्यापी ऐसे विषैले वातावरण के फैलने का मूल कारण क्या है? उसकी तरफ बहुत कम लोग ध्यान देते हैं। जब तक रोग की उत्पत्ति का मूल कारण नष्ट न किया जाय, तब तक रोग सर्वथा नष्ट नहीं हो सकता। किसी उपचार से कुछ समय के लिए वह रोग दब जाय, यह हो सकता है, किन्तु दबी हुई चीज कभी न कभी निमित्त मिलने से उठ ही आती है। इसलिये होना यह चाहिये कि हमें उसके मूल कारणों की खोज करके उसको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। वर्तमान समय की विद्यार्थियों और युवकों में ही नहीं, सर्वत्र फैली हुई उच्छृङ्खलता के कारण मुझे जो दिखते हैं, उनमें से कुछ ये हैं।

१—भारतीय संस्कृति का प्रतीक हमेशा से अपनी आत्मा से जो प्रतिकूल है, उसका आचरण दूसरे के साथ नहीं करना, यह रहा है किन्तु जब से पाश्चात्य संस्कृति ने अर्थात् अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का संहार करने की वृत्ति ने प्रवेश किया, तब से हमारे देश के लोगों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन हुआ है। 'आध्यात्मवाद' का महत्व ही यही था और है कि मनुष्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

को स्वार्थ परायण नहीं, किन्तु परमार्थ परायण बनना चाहिए इस आध्यात्मवाद का स्थान जड़वाद ने ले लिया। परिणाम यह आया कि हम मानवता से भी नीचे गिरते गये। मानवधर्म की दया, दाक्षिण्य, प्रेम, विनय, सभ्यता, छोटे बड़ों की मर्यादा ये बातें हम में से लुप्त होती गईं और हम सब समझने लगे कि, पिता हो या माता, साधु हो या गृहस्थ, बड़ा अधिकारी हो या छोटा मनुष्य, हम सब समान हैं और समानता के नाते उनके साथ कैसा भी व्यवहार करने का हमें हक़ है। मतलब कि हमारी संस्कृति का ह्रास होने के कारण, हमारी मानवधर्म की भावनायें नष्ट हुईं। उच्छृङ्खलता का यह मुख्य कारण है।

२—मानव जीवन के संस्कारों का विकास करने वाली चीज शिक्षण है। पिछले कई वर्षों से हमें जो शिक्षण मिल रहा है, वह विषयुक्त दूध है और इसी का परिणाम है कि शिक्षण का हेतु 'सा विद्या या विमुक्तये,' 'मातृदेवो भव,' 'पितृदेवो भव' 'आचार्य देवो भव', 'अतिथि देवो भव', 'सत्यम् वद', 'धर्मम् चर' यह सब हम से हजारों कोस दूर हो गये, इसके स्थान में 'स्वार्थम् साधय' इस एक सूत्र ने स्थान लेकर इसके लिये जो कुछ करना हो करने की प्रवृत्तियां हमारी जागृत हुईं। परिणाम यह आया कि विद्या, विद्यागुरु और विद्या का हेतु—उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। और हम में उच्छृङ्खलता आई।

३—खान पान, रहन सहन, रीति रिवाज, वेष भूषा इत्यादि बातों का प्रभाव जीवन पर पड़े बिना नहीं रहता। तामसिक, राजसिक और सात्विक ये तीन प्रकार की चीजें मानव जीवन में प्रभाव डालती हैं। वर्तमान समय के खान पान, रहन सहन वगैरा ने जीवन से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक वस्तुओं में परिवर्तन कर दिया है, यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हमारे मन, वचन और काया की प्रवृत्तियों में जो सादगी थी, विनय और विवेक था, उसका स्थान साहबी ठाठ ने ले लिया और उस साहबी ठाठ के अभिमान में उच्छृङ्खलता आई। अनुभवी लोगों को मालूम है कि हमारे देश की प्राचीन प्रणाली के अनुसार धार्मिक भावना—और रहन सहन रखने वाले, चाहे वह विद्यार्थी हो चाहे शिक्षक, चाहे अधिकारी हो चाहे व्यापारी, लेकिन उसमें हम उतनी उच्छृङ्खलता हम नहीं पायेंगे, जितनी साहबी ठाठ बाट में रहने वाले विद्यार्थी, शिक्षक और अधिकारी में प्रायः पाई जाती है। इस प्रकार शासन के अधिकार में चलने वाली शिक्षण संस्थाओं की अपेक्षा प्राचीन अर्वाचीन पद्धति पूर्वक गुरुकुल, आश्रम आदि संस्थाओं में उच्छृङ्खलता बहुत कम पाई जाती है।

४—पिछले वर्षों की राजनीति ने भी कुछ उच्छृङ्खलता की मात्रा हमारे देश में अधिक बढ़ाई है, ऐसा मेरा नम्र मत है। हमारे देश की राजनीति में परिवर्तन जब से होने लगा तब से उस परिवर्तन का मूलाधार पाश्चात्य राजनीति के अनुकरण करने में रक्खा गया। परिणाम यह आया कि, राजनीति राज्याधिकारियों में किंवा उससे सम्बन्धित जनों में ही नहीं रही, किन्तु सर्वव्यापी हो गई। चाहे विद्यार्थी हो, चाहे शिक्षक हो चाहे साधु हो अथवा गृहस्थ हो, चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष हो, चाहे व्यापारी हो चाहे किसान हो, सभी में राजनीति में भाग लेना चाहिये, ऐसी भावना एक अथवा दूसरे कारणों से मिल गई। परिणाम यह हुआ कि जिन लोगों को अभी जीवन-विकास करने का था, अभी शक्तियां प्राप्त करने की थी, अभी फूल के समान थे, वे भी अपने अपने कर्तव्यों से हाथ धोकर, पके पकाये फलों की तरह, राजनीति के क्षेत्र में टपाटप टूट पड़े। हुआ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यह कि उनके जीवन-विकास का स्रोत बन्द हो गया। वे अपनी शक्तियों से वंचित रह गये। वे फूलों की तरह मुरझा गये। उन बालकों में, उन विद्यार्थियों में, उन शिक्षकों में भी, अपरिपक्व अवस्था में झूठ, प्रपंच, छल, भेद, नीतिज्ञता आदि प्रवेश कर गया। देशकाल का विचार भूल गये, स्वपर का ध्यान नहीं रहा। विलायत की धारा सभाओं में अपने मत को मजबूत करने और दूसरे मत को परास्त करने के लिए कुर्सियाँ उठाई जाती हैं, गाली गलौज किया जाता है, एक दूसरे का अपमान किया जाता है; हम भी राजनीतिज्ञ हैं, हम भी स्वदेश प्रेमी हैं, हम भी किसी एक 'वाद' को रक्खे हुये हैं, इसलिए हमसे विरुद्ध मत रखने वाले का अपमान करना, तिरस्कार करना, गाली गलौज करना, राजनीति की दृष्टि से कोई बुरी बात नहीं। परिणाम यह आया कि हममें सर्वत्र उच्छृङ्खलता फैल गई।

५—बड़ों के आचरण का प्रभाव छोटों पर अवश्य पड़ता है। यह एक सामान्य हकीकत भी हम लोग भूल गए। सास बहू को सताते समय भूल जाती है कि वह भी एक दिन सास होने वाली है। शिक्षक अपने अधिकारी का अपमान करते समय भूल जाता है कि वह भी इन विद्यार्थियों का अधिकारी है। यह खयाल नहीं रखने का परिणाम है कि जिन लोगों ने अपने मातहत लोगों के सामने अपने से बड़ों का अपमान किया है अथवा जिन्होंने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये अपने से नीचे लोगों को, दूसरों का अपमान करने का पाठ पढ़ाया है, उनको खुद को उन्हीं लोगों की उच्छृंखलता आज भारी पड़ रही है। यदि हम खुद नीति पूर्वक, मानवता पूर्वक बड़ों के साथ व्यवहार करते तो, हमें छोटों की उच्छृंखलता का भोग न होना पड़ता।

सच पूछा जाय तो, उच्छृंखलता का जहर न केवल विद्या-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

थियों में फैला है और न युवकों में, यह जहर कहाँ नहीं देखा जाता ? किसी अधिकारी के दफ्तर में जाइये, किसी स्टेशन पर चले जाइये, किसी व्यापारी की दुकान पर चले जाइये, सेवा की मूर्ति बनकर देश सेवा के भाषण देने वाले किसी नेता के पास चले जाइये, शायद ही किसी के व्यवहार में आप सभ्यता या मीठेपन का अनुभव करेंगे। जहाँ देखो वहाँ तुनक मिजाजी, अभिमान, उच्छृंखलता पायेंगे। नम्रता, विनय, सभ्यता शायद ही कहीं देखने में आयगी। कल गलियों में और बाजारों में भटकने वाला मनुष्य, जिसकी कोई कीमत नहीं थी आज कुर्सी पर नेतागिरी के पोषाक में किसी से मीठी भाषा बोलेगा नहीं। इसलिये मेरा नम्र मत है कि देश के मानव समाज में से, इस दुर्गुण को दूर करने के लिए हमारी शिक्षण प्रणाली में सबसे पहिले परिवर्तन करने की आवश्यकता है। प्राचीन और नवीनता के मिश्रण पूर्वक जैसे शिक्षण प्रणाली निर्माण करने की जरूरत है, वैसे कोरा शिक्षण हमारे जीवन के लिए घातक है। सभी को हमारे चरित्र निर्माण की तरफ ध्यान देने की आवश्यकता है। सिनेमा, सह शिक्षण, बीभत्स चित्र शृंगारिक उपन्यास, आदि जो जो वस्तुयें हमारे चरित्र का पतन करने वाली हैं, हमारी संस्कृति का ध्वंस करने वाली है, ऐसी बातों को सर्वथा और जल्दी में बन्द कर देना जरूरी है।

इसके अतिरिक्त, जो जो संस्थाएं इस प्रकार के चरित्र निर्माण पूर्वक प्राचीन और नवीनता के मिश्रण के साथ शिक्षण का कार्य परोपकारार्थ चलाती हों, जिनमें किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों का निज स्वार्थ न हो, ऐसी संस्थाओं को अधिक से अधिक सहायता देकर अति पुष्ट और विकसित बनाने में शासन और जनता ने भी सहायता करनी चाहिये। क्योंकि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ऐसी ही संस्थायें सच्चे नागरिक, सच्चे सदाचारी, सच्चे देश प्रेमी रत्नों को उत्पन्न कर सकती है।

युवकों और विद्यार्थियों में से उच्छृंखलता मिटाने का यही एक मात्र साधन है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भारतीय संस्कृति के कुछ प्रतीक

भारतवर्ष हमेशा से धर्म-प्रधान देश रहा है। इसकी प्रत्येक दिनचर्या में भी आध्यात्मिक भावना को प्रधान पद दिया गया है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त बल्कि अग्नि संस्कार पर्यन्त की प्रत्येक क्रिया में संस्कार की शास्त्रोक्त विधि दिखलाई गई है और उस विधि में भी कर्तव्य भावना, ईश्वर के प्रति श्रद्धा, गुरुजनों के प्रति बहुमान, जनता के प्रति आत्मीयता इत्यादि बातें दिखलाई गई हैं। संक्षेप में कहा जाय तो एक भारतीय मानव को, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म का अनुयाई क्यों न हो, उसका जीवन परोपकार, सेवाभाव, सदाचार, श्रद्धा प्रेम से युक्त रखने का ही आदेश दिया गया है। स्वार्थवश वह कर्तव्यों से च्युत हो गया तो वह मानवता से गिर गया, ऐसा समझा जायगा, किन्तु उसको अच्छा कोई नहीं समझेगा।

पाश्चात्य संस्कृति और भारतीय संस्कृति में यही मुख्य अन्तर है। पाश्चात्य संस्कृति स्वार्थ परायणता से ओतप्रोत है। भारतीय संस्कृति परमार्थ परायणता को प्रधान स्थान देती है। पाश्चात्य संस्कृति मानव जाति के प्रति प्रेम और दया रखने को कहती है। भारतीय संस्कृति प्राणीमात्र को, चाहे वह एकेन्द्रिय क्यों न हो अपनी ही आत्मा के बराबर समझकर उसके प्रति प्रेम, दया रखने का आदेश करती है। पाश्चात्य संस्कृति में मानव जाति के प्रति प्रेम रखने का संकेत होते हुये भी, निजी स्वार्थ के लिए मानव जाति का संहार करने को भी लोग तैयार हो जायेंगे। भारतीय संस्कृति स्वार्थ सिद्धि के लिए दूसरे

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का नाश करना तो दूर रहा दूसरे की भलाई के लिए अपनी कुर्बानी करने को कहती है।

भारतीय संस्कृति प्रत्येक क्रिया में पुण्य-पाप की भावना को सामने रखती है अर्थात् भलाई और बुराई इन दो भावनाओं को सामने रख कर मन, वचन, काया की प्रवृत्ति रखने वाला मनुष्य हजारों बुराइयों से बच जायगा। और बुराइयों से बचकर आत्म विकास की तरफ बढ़ना, यही भारतीय संस्कृति का वास्तविक हेतु है।

मानव जाति के प्रति समानता का व्यवहार करना यह भारतीय संस्कृति का प्रथम प्रतीक है। और समानता वही मनुष्य रखता है जो, "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" इस नियम का पालन करता है। अर्थात् जो हमें प्रतिकुल है, ऐसी बातों का व्यवहार हमें दूसरे के साथ नहीं करना चाहिए। हमारी वस्तु कोई चोरी से ले जाय वह हमें पसन्द नहीं, हमें कोई तकलीफ दे वह हमें पसन्द नहीं, हमारे सामने कोई झूंठ बोले यह हमें पसन्द नहीं, हमारी बहन बेटी के सामने कोई कुदृष्टि से देखे यह हमें पसन्द नहीं, हमारे प्रति कोई गुस्सा करे गाली दे, यह हमें पसन्द नहीं। हमें चाहिए कि जो चीज हमें पसन्द नहीं, उसका व्यवहार हम दूसरे के साथ भी न करें। यह भारतीय संस्कृति का प्रथम प्रतीक है।

संसार में क्लेश और वैमनस्य का कारण ही यही है। हमारे साथ कोई दुर्व्यवहार न करे, यह तो हम चाहते हैं लेकिन हम हमारी सत्ता, श्रीमन्ताई, शान, बुद्धिबल का उपयोग किसी के साथ किसी भी प्रकार से करके हम अपना आतंक जमाये रखना चाहते हैं। हमारी शक्तियों के बल से हम अपना स्वार्थ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सिद्ध करना चाहते हैं। हम हमारी सत्ता सब पर थोपना चाहते हैं। यही अशान्ति का कारण हैं और इसका कारण इस संस्कृति की क्षीणता है।

भारतीय संस्कृति का दूसरा प्रतीक है पूज्यों का बहुमान, आदर और इसीलिए भारतीय शास्त्रों में यह आदेश दिया गया 'मातृदेवो भव', पितृदेवो भव', 'आचार्यदेवो भव', 'अतिथिदेवो भव' इत्यादि। तुम माता को देव समझो। पिता को देव समझो अतिथि को देव समझो। आदरणीय पुरुषों का आदर यदि न किया जाय, तो मानवता कहाँ रहेगी? आज की सर्व व्यापी उच्छृंखलता किसका परिणाम है? हम अपनी संस्कृति के संस्कारों से दूर हो गये। शिक्षण का वास्तविक हेतु यही था। शिक्षण मानवता के लिए था और मानवता दया, दाक्षिण्य, प्रेम सद्भाव, हमदर्दी में रही हुई है। कहा जाता है—वर्तमान समय में शिक्षण बहुत आगे बढ़ गया है। किन्तु हम भूल जाते हैं कि आज के जगत से मानवता हजारों कोस दूर होती जा रही है। थोड़े पढ़े हुये मनुष्य जिनको सुयोग्य माता पिताओं के संस्कार प्राप्त हुये हैं, जिन्होंने त्यागी, संयमी, सद्गुणी गुरुओं द्वारा शिक्षण प्राप्त किया है, उनमें जो मानवता के गुण देखे जाते हैं, वे पाश्चात्य संस्कृति में पले पोसे साहेब शाही में अपना गौरव समझने वाले बड़ी बड़ी डिग्री धारी महानुभावों में प्रायः बहुत कम पाये जाते हैं। मैं प्रायः शब्द इस लिये लगाता हूं कि ऐसे महानुभावों में भी कोई कोई अपवादरुप उच्च कोटि के मानवता के गुण रखने वाले महानुभाव भी देखे जाते हैं और इसका कारण तो उनकी कौटुम्बिक परम्परागत संस्कृति के संस्कार ही मालूम होते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसी प्रकार धर्म का आचरण यह भी हमारी संस्कृति का प्रतीक हमेशा से रहा है। इसीलिये हमारे शिक्षण के अन्त में गुरु के आशीर्वाद की प्रसादी में हमें यही प्राप्त होता है कि "धर्मं चर", 'सत्यं वद' धर्मका आचरण करो और सत्य बोलो। आज बड़े लोग, खास करके राजनीतिज्ञ लोग धर्म के नाम से भड़कते हैं। वे चाहते हैं कि शासन 'धर्म से निरपेक्ष हो' किन्तु शासन का संचालन मानव द्वारा होता है और मानव जीवन धर्म से निरपेक्ष नहीं रह सकता और इसीलिये शासन धर्म से निरपेक्ष नहीं रह सकता। क्योंकि, वस्तु अपने स्वभाव से जैसे निरपेक्ष नहीं रह सकती, वैसे मानव मानवता के धर्म से निरपेक्ष नहीं रह सकता। महात्मा गांधी ने अहिंसा, सत्य आदि को राजनीति में प्रविष्ट किया। इसी से उनकी विजय हुई और देश की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। यह बात प्रत्येक शासनकर्ता और राजनीतिज्ञ जानता है। फिर भी, यह कहना कि शासन धर्म से निरपेक्ष हो, यह तो 'वदतो व्याघात,' नहीं तो क्या है? हां, उनकी परिभाषा में धर्म की व्याख्या अन्य किसी प्रकार से की जाती है। तो यह बात दूसरी है। धर्म वह है जो हमें सन्मार्ग पर लाता है, जो हमें उन्नति शील बनाता है, जो हमें राग द्वेष रहित बनाता है, जो गिरते हुए को बचाता है अथवा संक्षेप में कहा जाय कि जो वस्तु मात्र का स्वभाव है। जैन शास्त्रों में धर्म की व्याख्या की है—'वत्थुसहावो धम्मो' वस्तु का स्वभाव, यह है धर्म। मानवता का स्वभाव है मानवता। यही उसका धर्म है। कौन कह सकता है कि मानव मानवता से निरपेक्ष है।

भारतीय संस्कृति में आचार (आचरण) को भी धर्म का एक अङ्ग माना है। खान, पान, रहन, सहन, विनय, विवेक, सभ्यता, दाक्षिण्य, शील यह आचार के अङ्ग हैं। इससे पतित

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

होने वाला, धर्म से पतित समझा जायगा। क्योंकि धर्म से गिरने वाले का दिल निष्ठुर, विध्वंस बन जाता है। उसके दिल में से आस्तिक्य का अंश हट जाता है। वह अपने दिल में समझने लगता है कि 'इसमें क्या' आज बड़े बड़े नेता प्रायः आचार विचार से, खान पान से भ्रष्ट हो गये हैं। इसका एक मात्र कारण है—इसमें क्या'? महात्मा गाँधी के अनुयायी होने का दावा करने वाले लोग मांस मच्छी, अंडे आदि का सेवन बहुत से करते हैं। साथ साथ अपने व्याख्यानों में महात्मा गांधी जी की अहिंसा की दुहाई भी देते हैं। यह परस्पर विरुद्ध बात नहीं क्या? महात्मा गांधी जी ने तो पहले आचरण और बाद में कथन का सिद्धान्त रखा है। आज बहुत से महात्मा जी के अनुयायीयों में कथन मात्र रह गया है।

इसी प्रकार भारतवर्ष की ब्रह्मचर्य संबन्धी भावनाओं में भी पाश्चात्य ने बहुत बड़ा परिवर्तन कर डाला है। कहाँ तो हमारी यह संस्कृति थी कि—

"माता स्वस्त्रा दुहित्रा वा,
नविविक्ता सनो भवेत्'।

माता, बहिन, पुत्री के साथ भी एक आसन पर नहीं बैठना चाहिये। कहने की आवश्कता नहीं है कि किस समय मनोवृत्ति किस प्रकार दूषित बन जाय। कहां तो हमारी यह संस्कृति और कहां आज यह शिक्षण, सिनेमा, बीभत्स चित्र नृत्य, सिंगार आदि द्वारा कला के नाम से भारतवर्ष में भ्रष्टाचार प्रचार, युवा अवस्था में पहुँचे हुये युवक और युवतियों के साथ में पढ़ने से क्या २ अनर्थ हो रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। सिनेमा के द्वारा आज हमारी बहिन, बेटियां, युवकों, बालकों बल्कि गृहस्थआश्रम के ऊपर कितनी कालिमा छाई जा रही है। यह

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भी किसी से अज्ञात नहीं है। जनता के जाहिर उत्सवों में युवा छोकरिये का कला के नाम से कितना बीभत्स प्रदर्शन किया जाता है और इसका कितना बुरा परिणाम आरहा है। इससे कोई भी अनभिज्ञ नहीं है।

इस प्रकार हमारी संस्कृति का नाश और गृहस्थ-आश्रम, मानवता का पतन घोर पतन सभी आंखों से देखते हुए भी, उन पतनों के साधनों का प्रचार दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। यह हमारे देश के दुर्भाग्य की परम निशानी है और यह दुर्भाग्य विशेष रूप से इसलिए समझ रहे है कि विदेशी शासन काल में इसका प्रचार जितना नहीं हुआ था, उससे कई गुना अब ज्यादा हो रहा है।

मनुष्य मानसिक कमजोरी के कारण गलती करता है, किन्तु गलती को गलती समझने वाला उस गलती से कभी दूर हो सकता है। किन्तु गलती को गलती नहीं समझ करके, उन चीजों को अच्छा समझने वाला मनुष्य उससे दूर नहीं हो सकता बल्कि अधिक से अधिक उसका प्रचार ही करता है। प्रायः यह दशा हमारे देश की संस्कृति के रक्षण और अरक्षण में भी हो रही है। जो लोग पाश्चात्य संस्कृति में पले-पोसे हैं वे उसके अनुसार अपनी भावनाओं का प्रचार करते हैं। किन्तु यह भारतीय संस्कृति के लिये विघातक है, यह बात वे लोग समझते हैं।

होना यह चाहिये कि हमें अपनी संस्कृति के ऊपर उसके अनुसार अपना ध्यान देकर रहन, सहन, खान, पान, शिक्षा प्रणाली, सब प्रकार आचार विचार रखना चाहिये। इसी से देश सुख समृद्धि एवं आध्यात्मिक भावना युक्त बल शाली बन सकता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अपराधों की रोकथाम

अनादिकाल से मानव जाति अपराधों को करती आई है। जैसे सज्जनता और दुर्जनता, सुख और दुःख, सत्य और असत्य, हिंसा और अहिंसा अनादिकाल से चले आये हैं वैसे अपराध और निरापराध भी अनादिकाल के साथ ही साथ चले आये हैं। तत्वदृष्टि से देखा जाय तो संसार के प्राणियों में अपराध करने वाले प्राणी एक मात्र मनुष्य हैं। पशु और पंक्षी आराम नहीं करते, भूल नहीं करेंगे। अपनी प्रकृति के विरुद्ध कार्य नहीं करते। उनको अपराधी मान कर मानव जाति उनके ऊपर अत्याचार करती है। क्रूर और हिंसक समझे जाने वाले शेर, सांप, बिच्छू आदि जानवर भी मानव जाति का अपराध करना तो दूर रहा वे मानव जाति को भयंकर प्राणी समझ कर उनसे दूर रहते हैं। छिपे रहते हैं। और आवश्यकता को छोड़ कर वे कभी किसी के ऊपर आक्रमण नहीं करते। मानव जाति को बुद्धि मिली है। बुद्धि के बल पर शस्त्रास्त्र तैयार किये हैं और उनका उपयोग अपनी लोभ वृत्ति, विषय वृत्ति, इन्द्रिय लोलुपता एवं शौक को पूरा कर ने में किया। वह उस समय भूल गया कि में अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर रहा हूं।

लेकिन मानव जाति को उसके अपराधों का दण्ड भी कुदरत ने साथ ही साथ देना शुरू किया। इसीलिये तो एक विद्वान का कथन है, अपराध और दण्ड साथ ही साथ रहता है।

देखा जाय तो हिंसक प्राणी भी आवश्यकता को छोड़कर हिंसा नहीं करते। किन्तु मानव जाति ही एक ऐसी जाति है जिसको

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कुदरत ने बुद्धि, विवेक, शक्ति आदि होने पर भी वह ऐसी स्वार्थान्ध बनाई गई है कि प्रति क्षण उसकी वृत्ति हिंसामय ही रहने लगी है। इन अपराधों का ही परिणाम है मानव जाति के ऊपर प्लेग, इन्फ्लुएन्जा, महामारी, भूकंप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुष्काल, टीड़ का उपद्रव, अग्नि का प्रकोप, पानी की बाढ़ें एवं अनेक रोगादि निमित्तों द्वारा हम सुख की भावनाओं को सफल कभी नहीं कर सकते। महात्मा गांधी ने अहिंसा और सत्य के द्वारा ही देश को स्वतंत्रता दिलवाई है। भारतीय प्रजा के सुख के लिये हमारी हिंसक वृत्ति कभी सरल नहीं होती। बुराई से भलाई उत्पन्न नहीं हो सकती। दूसरे पर आक्रमण करने की लुटेरू प्रवृत्ति से हम शान्ति स्थापित नहीं कर सकते। हिंसा से हिंसा बढ़ती है। हिंसा से शान्ति स्थापन नहीं हो सकती। बैर से बैर बढ़ता है बैर से बैर दूर नहीं होता।

संसार की शान्ति के लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय एक ही है और वह है अपराधों से दूर रहना। जब से मैंने यह सुना है कि मध्यभारत सरकार ने एक सात्विक व्यवहार, कुशल, निर्लोभी, निर्व्यसनी और उच्च प्रकार के नैतिक जीवन को रखने वाले विशेष आफीसर की नियुक्ति करके शिवपुरी जिले से अपराध रोकथाम आन्दोलन प्रारम्भ किया है। तब से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। वस्तुतः देख जाय तो जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मानव जाति की शान्ति का उपाय है अपराधों को बन्द करने के लिये किसी अंश में भी इस प्रवृत्ति को हाथ में लेना देश के लिये सद्भाग्य की निशानी है। यद्यपि यह कार्य आसान नहीं है किन्तु सुयोग्य सदाचारी मनुष्यों द्वारा यदि यह प्रवृत्ति चालू रखी जाय तो किसी अंश में भी सफलता मिल सकती है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस प्रवृत्ति में दो तीन बातें खास करके ध्यान में रखने की हैं।

१—अपराध करने वाले मनुष्य अपराधों की रोकथाम नहीं कर सकते। जो लोग रिश्वत लेते हों, जो एक या दूसरी तरह से लोगों को सताते हों, लोभ लालच में पड़ कर उल्टा-पुल्टा कार्य करते हों, ऐसे मनुष्य इस वृत्ति में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

२—अपराध करने वाले मनुष्यों की मनोविज्ञान की दृष्टि से परीक्षा करना अति आवश्यक है। भयंकर से भयंकर खूनों का और डकैतियों का काम करने वाले अपराधी समय आने पर ऐसे आदर्श मनुष्य बन जाते हैं कि जिनको लोग देव की उपमा देते हैं। भयंकर पापियों के दिलों में भी छिपी हुई दया, करुणा और प्रेम वात्सल्य की मात्रायें रहती हैं। उनको ढूंढ़ निकालने का मनोविज्ञान जिस मनुष्य के पास है वह ऐसे महा-पापियों को भी देव बना कर जनता के सामने खड़ा करता है। ऐसे पापियों का उद्धार तभी हो सकता है जब कि उसका उद्धार करने वाला स्वयं निर्दोष हो और उस पापी को निर्भयता प्राप्त हो। बहुत से पापी इसलिये भी पापों को नहीं छोड़ते हैं क्योंकि उनको यह भय रहता है कि मैं अगर इस धन्धे को छोड़ दूंगा तो मुझे समाज और शासन अधिक से अधिक जो हो सकती है सजा करेगा। हालांकि, अति पापों से उनके हृदय अति दुःखी रहते हैं और यह भावना-जागृति होती है कि मैं ईश्वर के आगे क्या जवाब दूंगा? ऐसे उदाहरण शास्त्रों में अनेक मिलते हैं। जैन शास्त्रों में एक कथन है "जै कम्मे सूरा, तै धम्मे सूरा," जो कर्म करने में शूर वीर होता है, वह धर्म करने में शूर वीर होता है। शक्ति शक्ति है। शक्ति का दुरुपयोग करके मनुष्य महापुरुष

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

या देव भी बनता है। मेरा तो नम्र मत है कि ऐसे अपराधियों व पापियों को निर्भयता देकर सन्मार्ग पर लाना चाहिये और उनकी शक्ति का उपयोग राष्ट्र, समाज व धर्म के लिये करने का अवकाश देना चाहिये। किसी गन्दे में कोई बहुमूल्य वस्तु पड़ी है तो वहां से उसे निकाल कर उसका सदुपयोग कर लेना यह बुद्धि शालियों के लिये जरूरी है।

३—यहाँ एक बात और विचारणीय है। भारतवर्ष हमेशा से धर्म प्रदान देश रहा है। त्याग भूमि है जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं। मानव जाति अपराधों को तो करती आई है किंतु उन अपराधों से बचने का प्रयत्न भी हमेशा से होता रहा है। इस कार्य को हमेशा से किया है त्यागी संस्था ने, साधुओं ने। समय-समय पर ऐसे अपराधी मनुष्यों के उद्धार के लिये महा-पुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने राजपाट वैभव कुटुम्ब परिवार सबको छोड़कर संन्यास लिया और जनता को अपराधों से बचाने का प्रयत्न किया। वे संसार से चल बसे किन्तु अपनी शिष्य परम्परा त्यागियों की छोड़ गये। उन त्यागियों ने भी यही कार्य किया और अब तक करते आये हैं। राष्ट्र के उत्थान में साधु संस्था का बहुत बड़ा हाथ है। जो कार्य गृहस्थ नहीं कर सकते वह कार्य साधु करते हैं क्योंकि उनमें त्याग है, तपस्या है, संयत है। मैंने कई बड़े-बड़े राज्याधिकारियों से निवेदन किया है कि आप लोग साधु संस्था से काम लीजिये। उस संस्था को छोड़ देना देश के लिये भयंकर शाप है। यदि देश का उत्थान करना है तो आज भी जिनमें अद्भुत शक्तियां हों, उन शक्तियों का सदुपयोग कर लीजिये। शिक्षण प्रेमी विद्वान अनुभवी शिक्षण शास्त्री हों उनसे शिक्षण के प्रचार का काम लीजिये। राजनीति में अनुभवी त्यागियों का राजनैतिक क्षेत्र में सलाह मशवरा लीजिये, उपदेश

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का काम करने वालों से उपदेशक का काम लीजिये। अच्छे विद्वान साहित्यकारों से साहित्य प्रचार का काम लीजिये। शासन को उनके निमित्त कोई खर्च नहीं करना पड़ता। जो काम दो हजार या पाँच हजार की वेतन पाने वाला लोभी, मोही, स्वार्थी, गृहस्थ नहीं कर सकता है, वह काम निर्लोभी, निस्पृह, त्यागी साधु मात्र समाज में से रोटी के दो टुकड़े मांग कर उदर निर्वाह करके कर सकेगा। उन्हें न रहने को महल चाहिये न मौज उड़ाने को मोटर चाहिये न पैसा चाहिये।

जरूरत है ऐसी शक्तियों का संग्रह करने की। जरूरत है ऐसी शक्तियों को एकत्रित करने की। मेरा विश्वास है कि आज भी हिन्दुस्तान में ऐसी हजारों नहीं लाखों शक्तियाँ हैं। ऐसी शक्तियों का ऐसे साधु संतों का संगठन करके उनके द्वारा अपराध रोकथाम का कार्य किया जाय तो कितना काम हो सकता है, भारतीय मनुष्यों का जीवन स्तर कितना ऊँचा हो सकता है। किन्तु यह दुःख और दुर्भाग्य की बात है कि इस वास्तविक उपाय की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। अन्त में अपराध रोकथाम का जो आन्दोलन मध्यभारत शासन ने प्रारम्भ किया है इसलिये शासन को और इस आन्दोलन के अध्यक्ष श्रीमान् रिसालसिंह जी महोदय को मैं अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि इस आन्दोलन में सफलता प्राप्त करने की शक्ति प्रभु उनको दें।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बुद्धिजीवी और श्रमजीवी

सारे संसार में बुद्धिजीवी और श्रमजीवियों का एक संघर्ष चल रहा है। श्रमजीवी श्रमद्वारा अपना गुजारा करें या न करें, किन्तु दूसरे लोग तो उनका अवश्य लाभ उठाते हैं। बल्कि हिन्दुस्थान में तो श्रमजीवियों के ऊपर ही सारा देश गुजारा कर रहा है। बुद्धिजीवी बुद्धि के बल पर समस्त मानव समाज पर अपना आधिपत्य भोगते रहे हैं। इतना ही नहीं, बुद्धिजीवी मानव जाति पर अपने आधिपत्य का इतना आंतक जमाये रहे कि श्रमजीवीओं का जीवन ही मानो जीवन नहीं, किंतु पशु जीवन है; परन्तु संसार के किसी भी जुल्म को सब कोई सहन कर सकते हैं, केवल कूदरत ही एक ऐसी है, जो सहन नहीं कर सकती। इतिहास के पुष्ठ इसके साक्षी हैं। किस शासक के जुल्म को कुदरत ने सहन किया? किस सत्ता को कुदरत ने हमेशा कायम रहने दिया? किस श्रीमंताई के मद को कुदरत ने चूर चूर नहीं किया? किस के गर्व को कुदरत ने फूलने फलने दिया? जिस प्रजा पर बुद्धिजीवी शासन करते हैं, उस प्रजा के हित का ख्याल न रखते हुए, केवल अपनी स्वार्थसिद्धि में बुद्धि का उपयोग करना, यह प्रजा के प्रति अत्याचार नहीं तो क्या है? और उस अत्याचार को कुदरत ने कभी सहन नहीं किया।

इस प्रकार बुद्धिजीवी, श्रमजीवियों की अज्ञानता का लाभ उठाते है। इसी 'बुद्धिजीवी' समाज ने 'पूंजीवाद' और 'सत्ता-वाद' की उत्पत्ति की है। और जहां 'सत्तावाद' और 'पूंजीवाद' का एकीकरण होता है, वहाँ श्रमजीवियों का खात्मा हो, इसमें

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आश्चर्य की कोई बात नहीं। परन्तु जैसा कि में ऊपर कह चुका हूं, किसी का जुल्म, किसी का मद हमेशा पनपता नहीं।

जबलों पूरबल पुण्य की पूंजी नहीं करार।
तबलो सब कुछ माफ है अवगुण करो हजार॥

आखिर उसका भी खात्मा कुदरत करती ही है। परन्तु जिस समय जिस की उन्नति का सूर्य मध्याह्न काल में पहुँचता है, उस समय उससे नीचे गिरने वालों को देख कर उसका मजाक उड़ाता है। अपनी सत्ता-श्रीमंताई में मदमस्त होकर दाँत निकालता है। किंतु जब उसे मालूम होता है कि हमारे बुद्धि-जीवी महानुभावों को हमारी प्राचीन लोकोक्ति मानो याद आई है—

पीपल पान खरंता हसतां कूपलियां।
मुझचीती तुझ बीत से धीरांवपलियां॥

सूखे हुए पीपल के पत्ते को नीचे गिरते देख कर वृक्ष पर की कोपल नयी पत्तियां हंस रही हैं परन्तु गिरने वाले पत्ते कह रहे हैं, हसो, खूब हंसो, परन्तु जरा धीरज रखना जो दशा हमारी हुई है, वह कल तुम्हारी होने वाले है।

संसार का इतिहास इसका साक्षी हैं। यह परम्परा हमेशा से चली आती है।

परन्तु अब जमाना पलटा है। हमारे बुद्धिजीवी महानुभाव भी अब यह समझने लगे हैं कि हम चाहे कितने ही पढ़े लिखे हों, परन्तु केवल दवात-कलम के सहारे मानव-जीवन पर सत्ता चलाने का समय अब नहीं रहा। अब तो हमें भी कुछ न कुछ श्रमकरना अनिवार्य हो जाता है। चाहे वह श्रम किसी भी प्रकार का स्वपर हित का करें, किन्तु करना जरूरी है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसी भावना का परिणाम है कि, हमारे पढ़े लिखे श्रीमंत और सत्ताधिकारी भी कभी-कभी जगत को यह दिखाने का प्रयत्न करने लगे हैं ताकि जनता को यह ज्ञात हो कि, प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह कितना ही पढ़ा लिखा क्यों न हो, श्रीमंत हो या सत्ताधीश क्यों न हो, श्रमजीवी बनना आवश्यक है।

इसमें कोई शक नहीं कि पढ़े लिखे श्रीमंत एवं सत्ताधिकारी की यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय है। परन्तु इसके पीछे प्रायः दम्भ की मात्रा विशेष देखी जाती है। इसलिये यह प्रवृत्ति दूसरों के ऊपर कम प्रभाव डालती, दूसरों के लिये आदर्श नहीं बनती।

आदर्श उपस्थित करना एक चीज है और दम्भ ढोंग करना दूसरी चीज है। आदर्शवादी उस प्रवृत्ति को खाली दिखावे के लिये नहीं करता। यह तो केवल अपना कर्तव्य समझकर करता ही जाता है। उसका निरन्तर करते रहना यही आदर्श है। इसमें दिखावे की, धूम मचाने की, शौक करने की जरूरत नहीं रहती।

मैं इस विषय में दो दृश्य यहां उपस्थित करना चाहता हूँ। अभी-अभी खेतों में अन्नोत्पादन में बाधक आंधी, आवाशीशी के उन्मूलन का आन्दोलन चला। आवाशीशी के पौध ऐसे नहीं होते, जिनको उखाड़ने के लिये सबलया गेंती की आवश्यकता पड़े। छोटे-छोटे पौधों को तो बच्चे भी उखाड़ फेंक देते हैं परंतु आवा शीशी उन्मूलन करने का आदर्श दिखाने के लिये अधिकारियों की एक सभा होती है, जिसमें मिनिस्टर, कलेक्टर, बैरिस्टर, आडीटर, एडीटर, मास्टर, डाक्टर, डायरेक्टर, रिपोर्टर आदि पढ़े लिखे सभी 'टर' इकट्ठा होते हैं और सभी के हाथ में गेंती होती है। मानो किसी सौ वर्ष के पुराने झाड़ को मूल से उखाड़ना है इस प्रकार कमर से जरा झुके हुए सभी खड़े रहते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किसी भाई से पूछिये 'क्यों क्या बात है ? ये सब महानुभाव चुप क्यों है, अपना काम क्यों नहीं करते ?' वे जवाब देंगे। फोटोग्राफर अभी आया नहीं है। मोटर लेने गयी है।'

'क्या ये महानुभाव इस सारे खेतों में से आधी का उन्मूलन करेंगे ? नहीं जी, सिर्फ फोटोग्राफर फोटो ले, इतनी ही देर गेंती हाथ में रहेगी और कमर से झुके रहेंगे।'

सोचिये, क्या मानव जीवन में किसी भी चीज के आदर्श खड़ा करने के लिये, इन बातों की आवश्यकता है ? क्या क्षण भर का शौक करने से जगत हमारे आदर्श का आदर करता है ? क्या श्रमजीवी और बुद्धिजीवी सभीकी बुद्धि इतनी कुंठित होती है कि जिससे वे ढोंग और वास्तविकता को न पहिचान सके ? क्या यह इसका परिणाम नहीं होगा कि हमारी समस्त भाषण श्रेणियों और समस्त प्रवृत्तियाँ प्रायः निष्फल सी होती हैं। बहुरूपी, 'बहुरूपी' है ऐसा ज्ञान होने पर, बहुरूपी के किसी भी स्वांग का क्या महत्व रह जाता है। साधु नहीं परन्तु साधुके वेष में कोई धूर्त है, यह मालूम होने पर उसके प्रति साधु की कौन श्रद्धा कर सकता है।

मैं यहाँ एक और उदाहरण देना चाहता हूं।

अभी कुछ दिन हुए शिवपुरी के सर्किल रोड से मैं आश्रम में आ रहा था। मेरे साथ में एक विद्यार्थी था। मैंने सड़क के किनारे एक खेत में एक काश्तकार को देखा, जो धोती का लंगोट मार कर गेती से गड्डा खोद रहा था। गरमी पड़ रही थी। शरीर खुला था। सिर से बदन पर पसीने की धाराएं छूट रही थीं। थोड़ा मैं आगे निकल आया, तो विद्यार्थी ने मेरा ध्यान खींचा 'आपको नमस्कार कर रहे हैं'। काश्तकार को नमस्कार करने की सूझी ! मैंने आशीर्वाद देकर पूछा कौन ? मैं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हूं 'पाराशर'। 'अरे आप तो कमाल कर रहे है !' उन्होंने कहा, 'बगीचा बनाना है, फल वाले झाड़ों के लिए खड्डे खोद रहा हूं।'

मेरे मुंह से सहसा शब्द निकले 'आप सच्चा आदर्श खड़ा कर रहे हैं। उन्होंने विवेक बताया, 'आपकी कृपा से।'

ये पाराशर जी कौन। यह बताने की आवश्यकता है क्या? शिवपुरी के प्रसिद्ध वकील वैदेहीचरण जी पाराशर, एम० ए० एल० एल० बी० मध्यभारत के भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री एवं राजगढ़ राज्य के भूतपूर्व एडमिनिस्ट्रेटर। 'खेती खुद की' इस कहावत को श्री पाराशर जी चरितार्थ ही नहीं करते, बल्कि बिना बोले वास्तविक काम करने से ही आदर्शता खड़ी होती है, इसको खुद के जीवन से प्रमाणित भी कर दिखलाते है।

इसके कुछ दिन पहले की बात है। मेरे पास भाई पाराशर जी बैठे थे। मैंने कहा 'कहिये अब के आप मन्त्री बन रहे हैं क्या?' उन्होंने कहा 'आप तो मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मैं काश्तकार बनूं। मैंने उस समय बड़े आदमियों की विवेक भाषा समझी थी परन्तु आज तो मैं उन्हें आदर्श काश्तकार देख रहा हूं।

मेरे कहने का आशय यह है कि बुद्धिजीवी मनुष्यों को भी श्रमजीवी बनना वर्तमान समय में बहुत जरूरी हो गया है। श्रम का मतलब यह नहीं कि केवल काश्तकारी ही करें। पढ़े-लिखे दफ्तरों में जाने वाले महानुभाव भी, अपने कर्तव्यों का पालन करें, उनके सामने काफी काम पड़ा हुआ होता है। मुझे दफ्तरों में जाने का काम नहीं पड़ता, परन्तु सुनता हूं कि कोई-कोई अधिकारी रात के सात-सात आठ-आठ बजे तक काम करते हैं और अपने मातहत लोगों को अपनी जीवन प्रणाली से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यह बताते हैं कि हम पढ़े-लिखे लोग भी इमानदारी के साथ काम करें तो कितना कर सकते हैं।

इसी प्रकार शिक्षण संस्थाओं में शिक्षक-प्रोफेसर लोग काफी काम पढ़ाने में करते हैं। परन्तु कई लोग बिचारे एक-दो पिरीयड से अधिक पढ़ाने में मानो अपने डिग्री का पहाड़ उनके ऊपर गिर पड़ता देखते हैं। ऐसे लोग अपने शरीर का इतना प्रमाद दयापात्र बनाते हैं कि फिर उनसे कोई भी काम नहीं होता। कमनसीबी से ऐसे महानुभावों को अपनी पोजीशन की नौकरी न मिले, तो उन्हें भगकर आन्तरिक दुःख उठाना पड़ता है।

इसलिये बुद्धिजीवी या श्रमजीवी प्रत्येक मानव को श्रम द्वारा ही द्रव्योपार्जन करना चाहिये। श्रमसे पैदा किये हुये अन्न में मिठास होती है। वह पाचक होता है। मन में एक प्रकार का अभिमान होता है कि मैंने अपने परिश्रम की रोटी खाई है और कुदरत भी ऐसे परिश्रमी मनुष्यों का साथ देती है। वरना रोग-शोक संताप में ही जीवन व्यतीत होता है।

राष्ट्र के उत्थान के लिए भी प्रत्येक भारतीय को बुद्धिजीवी की अपेक्षा श्रमजीवी बनना बहुत जरूरी है। चाहे श्रम किसी भी क्षेत्र में हो। निरर्थक बिना परिश्रम पैदा करने की भावना को दूर करना चाहिये।

—:*:—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्वतंत्रता और सुतन्त्रता

आज भारत की स्वतन्त्रता का दिन है। मेरे ख्याल से इसको दिन नहीं कहना चाहिये, त्योहार या पर्व कहना चाहिये और इसका उत्सव भी एक पक्षीय नहीं, सार्वजनिक त्यौहार के रूप में मनाया जाना चाहिए। भारतवर्ष की भिन्न भिन्न जातियों और भिन्न भिन्न धर्मों में अनेक त्यौहार दीर्घकाल से मनाये जारहे हैं। उन त्यौहारों की अपेक्षा आज के त्यौहार में विशेषता है। वे त्यौहार भिन्न भिन्न जातियों और धर्मों में अपने अपने विभाग में ही मनाये जाते हैं, किन्तु आज का ही एक ऐसा पर्व है जिसका सम्बन्ध न जातियों के साथ है न धर्मों के साथ। भारत के प्रत्येक व्यक्ति के लिये आज का दिन बड़े महत्व का है। आज के पर्व में आबाल-वृद्ध समस्त लोगों को उत्साह और हर्ष से भाग लेना चाहिये। जनता की अज्ञानता के कारण स्वतन्त्रता के महत्व को हम कम समझे हैं। सोने के पिंजड़े में भी रक्खा हुआ तोता जब पिंजड़े के बन्धन से मुक्त होता है, उस समय उसके आनन्द की कोई सीमा नहीं रहती। माता पिता से बिरही एक निर्दोष गुनहेगार जब जेल की यातनाओं से मुक्त हो जाता है, उस समय उसके हर्ष का पार नहीं रहता। स्वतन्त्रता का यह स्वभाव है, आजादी का यह परिणाम है; क्योंकि बन्धन ही दुःख है और बन्धन से मुक्त होना ही दुःख से मुक्त होना है। सदियों से हमारा देश परतन्त्रता के दुःखों को भोगता आया है। उन दुःखों से अब हमारे देश की मुक्ति हुई है। स्वतन्त्रता वह चीज है, जिस तंत्र का संचालन हमारे खुद के हाथ में हो। दूसरे का मुंह ताकना न पड़े, दूसरे से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रार्थना करनी न पड़े, दूसरे के सामने हाथ पसारना न पड़े, इसका नाम है स्वतंत्रता।

हमारे देश की राज्य व्यवस्था दूसरों के हाथ में रही, हमारे यहां का शिक्षण दूसरों के हाथ में रहा, यहां की संस्कृति दूसरों के हाथ में रही, आर्थिक व्यवस्था दूसरों के हाथ में रही और हमारी बहन बेटियों की रक्षा भी दूसरों के हाथ में रही। गोया भारत का सर्वस्व दूसरों के हाथ में रहा। लेकिन देश के सद्-भाग्य से महात्मा गांधी जी, पं० नेहरू जी तथा अन्य महानु-भावों के प्रयत्न से अब देश स्वतन्त्र हुआ है, दूसरों का बन्धन टूट गया है, गुलामी से भारत मुक्त हो गयाहै और सारे देश की व्यवस्था, शिक्षा, संस्कृति, आर्थिक व्यवस्था, संरक्षण आदि सारी बातें भारतमाता के सुपुत्रों के अधीन आई है किन्तु इस स्वतन्त्रता का स्वाद हमें जैसा मिलना चाहिये वैसा नहीं मिल रहा है। यह बात सभी स्वीकार करते हैं, चोटी के नेता भी; किन्तु हमें इस बात का भी विचार करना आवश्यक है कि स्वतन्त्रता को प्राप्त हुए अभी ३ साल हुए हैं। कार्यकर्त्ताओं को इन तीन वर्षों में अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा है और सारे देश की नई व्यवस्था जमाई जाने के कारण स्वतन्त्रता का स्वाद समस्त जनता को अनुभव करने का मौका मिले, यह स्वाभाविक है।

दूसरी तरफ अवसरवादी व्यापारियों और कुछ अधिका-रियों ने भी अपनी लोभवृत्ति का पूरा पूरा परिचय दिया है। हमारे ही भाई बहन भूखों मरें, नंगे रहें, इसकी हमें कोई दर-कार नहीं। ऐसा अवसर फिर कहाँ आने को था, ऐसा समझने वालों में भ्रष्टाचार खूब बढ़ा और अभी भी चल रहा है। तारीफ तो इस बात की रही और हो रही हैं कि एक व्यापारी दूसरे व्यापारी के भ्रष्टाचार को छिपा रहा है और दूसरा पहिले के।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हमारी स्वार्थान्धता ने इन तीन वर्षों में देश को बहुत नुक-सान पहुँचाया। आज हमारे देश में अन्न और वस्त्र की समस्या अभी तक हल नहीं हुई है और देशवासियों को कष्ट उठाना पड़ रहा है। इस भ्रष्टाचार को भी मैं एक कारण समझता हूं। सच बात यह कि जिन लोगों के ऊपर देश-रक्षा की, देश की उन्नति की जवाबदारी है, उन्हें अपने जीवन को शुद्ध रख करके कार्य करना चाहिए। वही मनुष्य दूसरों को कहने का अधिकारी है, जो स्वयं आचारण में लाता है।

भारतवर्ष में नैतिक स्तर कितना गिर गया है, यह दिख-लाने की आवश्यकता है क्या? आज नैतिक स्तर गिर जाने का मुख्य कारण मेरी समझ से हमारे देश में जड़वाद का प्रचार होना है। पाश्चात्य लोगों के सहवास से हमारा देश जड़प्राय: बन गया है। हमारे हृदयों में से धार्मिक भावनाएँ नष्ट हो गई हैं। धर्म से मेरा मतलब सम्प्रदाय या क्रियाकाण्ड से नहीं है। मेरी धर्म की व्याख्या है, 'अन्तःकरण शुद्धित्वं धर्मत्व' हृदय का पवित्र होना धर्म है, इस प्रकार की धार्मिक भावना हमारे हृदयों में न होगी, तब तक लोभ, स्वार्थ, क्रूरता, निर्दयता आदि से हम दूर नहीं हो सकते और जब तक हमारे ये दुर्गुण दूर न हों, तब तक हमारा नैतिक स्तर ऊंचा नहीं हो सकता, नैतिक स्तर के ऊंचे जाने की और भारतीय संस्कृति की हम बातें भले ही करें। भारतवर्ष परतन्त्रता से मुक्त होकर स्वतन्त्र बना, किन्तु स्वतन्त्रता सुखदायी नहीं हो सकती है जब तक कि उसमें सुतन्त्रता की सुगन्धी न मिले। स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता बन सकती है और आजकल प्रायः बन रही है। इसलिये सुतन्त्रता की बड़ी आवश्यकता है। स्वच्छन्दता का ही परिणाम है कि आज के युवक बहुधा अपने गुरुओं, माता पिताओं आदि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बड़ों की मर्यादा नहीं रखते । उसमें थोड़ासा एक और भी कारण मैं समझ रहा हूं । शिक्षक और माता पिताओं को जिस मर्यादा के साथ अपने विद्यार्थियों और बच्चों के प्रति रहना चाहिये, वे उस मर्यादा से नहीं रहते । उन्हें भी अपनी अपनी मर्यादा को संभाल करके ही व्यवहार रखना चाहिये । लेकिन इन सारी बातों का परिणाम तो मैं आज कल की हवा को ही समझ रहा हूं । दूसरे शब्दों में मैं उसको स्वच्छन्दता कहता हूं ।

हमारी धार्मिक भावनाएँ नष्ट होने से हमारा पश्चिम का अनुकरण मुख्य कारण है । दुःख तो इस बात का ज्यादा है कि जिस बात से हमारा, हमारे बालकों का, हमारे युवकों का और यूं कहना चाहिये कि हमारे बड़े लोगों का भी नैतिक स्तर नीचे गिर गया है और गिरता जारहा है, उन्हीं बातों को हम उत्तेजन दे रहे हैं । कौन नहीं जानता है कि सिनेमाओं ने हमारे युवकों का जीवन नष्ट किया है, कौन नहीं जानता है कि हमारी बहन बेटियों की मर्यादाओं का नाश इन सिनेमाओं ने किया है । चोरी, डकैती, दुराचार, शराबखोरी ये बातें अच्छे २ कुलोत्पन्न लोग भी कहां से सीखें ? मुझे अगर करने को छूट मिलती हो और मैं अपने देश की सरकार से सिफारिश करने का अधिकार रखता हूं तो मैं जोर से कहूंगा कि सब से पहिले हिन्दुस्तान के सब सिनेमाओं की दीवालें तुड़वा देनी चाहिये । यह कहा जाता है कि सिनेमा के द्वारा शिक्षा का प्रचार अच्छा हो सकता है । मुझे मालूम नहीं कि किस शिक्षा का प्रचार अच्छा हो सकता है । अभी तक सिनेमाओं से जो शिक्षा मिली वह तो प्रत्यक्ष है और देश-कल्याण की, मानव-कल्याण की अगर शिक्षा का प्रचार सिनेमा के द्वारा हो सकता है तो इसका विरोध कोई नहीं कर सकता ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसी प्रकार की दूसरी एक उल्टी प्रवृत्ति का भी उदाहरण दूं। जिस प्रकार हमारा नैतिक स्तर ऊंचा लाने के लिये कहा जाता है उसी प्रकार स्वास्थ्य के प्रयत्न हो रहे हैं किन्तु स्वास्थ्य के नाश करने के साधन जब तक बन्द न किये जाएंगे तब तक स्वास्थ्य का प्रचार कभी सिद्ध होने का नहीं है। मैं एक उदाहरण दूं। अभी गर्मियों के दिनों में एक डाक्टर ने मुझे कहा शिवपुरी में लड़के लड़कियों में और कुछ बड़ों में भी गले का और खांसी का रोग बहुत बढ़ा है। तलाश करने पर मालूम हुआ कि जब से शिवपुरी में आईस्क्रीम की दो फेक्टरियां खुली हैं तब से यह रोग फैला है। रंग डालकर के पानी के बरफ के टुकड़ों को तीलियों पर लगा कर पैसे दो दो पैसे में बेचे जाते हैं। लड़के लड़कियां रंगीन बरफ को देखकर ललचाते हैं और चूस चूस कर बीमार पड़ते हैं। एक तरफ से लड़कों के मां बापों को लड़को बीमार करने में खर्च हुआ और दूसरी तरफ से दवाई का खर्चा बढ़ा। हमारे नन्हें नन्हें बालकों के स्वास्थ्य को नाश करके, उनके जीवनों को नष्ट करके, उनकी पवित्रताओं का नाश करके पैसा बटोरने के लिये ऐसी फेक्टरियां और सिनेमाओं को खोलने वाले हमारे श्रीमन्त लोग देशके शुभेच्छुक हैं क्या? सोचने की बात है यूरोप और अमेरिका का अनुकरण हम कर रहे हैं परन्तु भूलना न चाहिये कि यह भारतवर्ष, यह आस्तिक देश, यह ईश्वर को मानने वाला देश, यह पुण्य पाप के फलों पर श्रद्धा रखने वाला देश मानव जाति का हित करने वाला हमारा देश, अपना नुकसान उठा करके भी दूसरों का भला करने वाला हमारा देश, हिंसा में पाप मानता है। किसी की बहन बेटी के सामने में न करने में भी पाप मानता है ऐसे देश यूरोप और अमेरिका का अनुकरण करके शक्तिहीन, धर्महीन, ब्रह्मचर्यहीन नहीं बन सकता। इसका

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आधार भारत की सरकार पर है। भारतीय सरकार ही इस पतन से देश को बचा सकती है और ऐसे उपायों को लेंगी तभी यह स्वतन्त्रता सुतन्त्रता की सुगन्धि सुखदायी हो सकेगी। अगर अकेली स्वतन्त्रता रही तो वह स्वच्छन्दता में अधिकाधिक परिणत हो जायगी इसलिए इसे सुतन्त्र बनाना परम आवश्यक है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

श्री विजयधर्मसूरि ग्रन्थमाला से प्रकाशित पुस्तकें

संस्कृति पुस्तकें

नम्बर	नाम	कर्ता या सम्पादक	
२.	धर्मवियोगमाला	मु. श्री हिमांशुविजयजी	०-२-६
३.	प्रमाणनयतत्त्वालोकः	,,	१-५-६
	पं श्री रामगोपालाचार्यकृतका युक्तः	,,	
१९.	जैनी सप्तपदार्थी	,,	०-६-३
३७.	श्री पर्वकथा संग्रह	,,	०-५-०
३९.	श्री द्वादशव्रत कथन	,,	०-१०-०
४९.	संस्कृत प्राचीन स्तवन संदोह	मु. श्रीविशालविजयजी	०-४-०
६४.	नूतन बाल संस्कृत शिक्षिका भा. १.	मुनि श्री विद्याविजयजी	०-१२-०

गुजराती अनुवादयुक्त संस्कृत पुस्तकें

८.	जयन्त प्रबन्ध	मु. श्री हिमांशुविजयजी	०-४-०
२७.	सुभाषित पद्यरत्नाकर भाग १.	मु. श्री विशालविजयजी	१-९-०
३०.	अर्हत् प्रवचन	मु. श्री विद्याविजयजी	०-६-३
३१.	सुभाषित पद्यरत्नाकर भाग १.	मु. श्री विशालविजयजी	१-९-०
३४.	,, ,, भाग ३.	,, ,,	१-९-०
३६.	हेमचन्द्र वचनामृत	मु. श्री जयन्तविजयजी	०-१०-०
४८.	सुभाषित पद्यरत्नाकर भाग ५.	मु. श्री विशालविजयजी	०-१२-०
५२.	,, ,, भाग ४.	,,	१-९-०

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

गुजराती पुस्तकें

१.	विजयधर्मसूरि स्वर्गवास पछी	मु. श्री विद्याविजयजी	१-०-०
६.	विजयधर्मसूरिनां वचनकुसुमो	,,	०-५-०
१०.	आबू: ७५ चित्रों के साथः	मु. श्री जयन्तविजयजी	३-४-०
११.	विजयधर्मसूरि टूंक जीवनरेखा	धीरजलाल टी. शाह	०-२-६
१२.	श्रावकाचार	मु. श्री विद्याविजयजी	०-३-०
१३.	शाणो सुलसा	,,	०-४-०
१४.	समयने ओलखो भाग २	,,	१-८-०
१५.	,, भाग १	,,	१-०-०
१७.	सम्यक्त्व प्रदीप	उपा. श्री मंगलविजयजी	०-५-०
१८.	विजयधर्मसूरिपूजा	,,	०-५-०
२१.	ब्रह्मचर्यदिग्दर्शन	आ. श्री विजयधर्मसूरिजी	०-५-०
२२.	वक्ता बनो	मु. श्री विद्याविजयजी	१-८-०
२३.	महाकवि शोभन अने तेमनी कृत	मु. श्री हिमांशुविजयजी	०-४-०
२४.	ब्राह्मणवाड़ा	मु. श्री जयन्तविजयजी	०-५-०
२५.	जैनतत्वज्ञान	आ. श्री विजयधर्मसूरिजी	०-४-०
२६.	द्रव्यप्रदीप	उ. श्रीमंगलविजयजी	०-५-०
२७.	धर्मोपदेश	आ. श्रीविजयधर्मसूरिजी	०-७-६
२९.	सप्तभंगीप्रदीप	उ. श्रीमंगलविजयजी	०-५-०
३२.	धर्मप्रदीप	,,	०-५-०
४०.	श्री अर्बुद प्राचीन जैन लेखसंदोह भा. दूसरा	मुंजयन्तविजयजी	३-१२-०
४५.	श्रीविद्याविजयना व्याख्यानो	मु. श्री विद्याविजयजी	०-१०-०
४६.	श्रीहिमांशुविजयजीना लेखो	,,	१-८-०
५१.	जैनधर्म	,,	१-४-०

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

५३. मारी सिन्धयात्रा	श्री विद्याविजयजी	३-२-०
५५. अमारा गुरुदेव	रा. सुशील	१-९-०
५६. अलिवदा	डा. पुरुषोत्तम त्रिपाठी	१-४-०
५७. शंखेश्वर महातीर्थ भा. १—२	मु. जयन्तविजयजी	१-९-०
५८. मारी कच्छयात्रा	मु. श्रीविद्याविजयजी	०-१०-०
६०. सर्वज्ञकथित सिद्धान्तसार	र तिलाल महेता	२-०-०
६२. गुजरातनुं परम धनः विद्याविजयजी	मुलजीभाई पी. शाह	७-०-०

हिन्दी पुस्तकें

४. श्रावकाचार	मु. विद्याविजय जी	०-५-०
५. श्रीविजयधर्मसूरि के वचनकुसुम	,,	०-५-०
६. श्रीविजयधर्मसूरि अष्टप्रकारीपूजा	,,	०-५-०
२०. ब्रह्मचर्यदिग्दर्शन	आ. श्रीविजयधर्मसूरिजी	०-५-०
३३. मेरी मेवाड़यात्रा	मु. विद्याविजयजी	०-८-०
३५. भक्त कैसे बनें ?	,,	१-८-०
३७. अहिंसा	,,	०-१२-०
४२. वीरवन्दन (कविता)	वीरभक्त	०-२-६
४७. जैनधर्म	मु. श्रीविद्याविजयजी	१-४-०
६१. ईश्वरवाद	,,	१-४-०
६३. शिक्षण और चरित्र निर्माण	,,	भेंट
६५. इन्दौर-व्याख्यान माला	,,	१२-८-०

सिंधी पुस्तकें

४१. सच्चो राहबर	पार्वती सो. अडवानी	भेंट
४३. अहिंसा	,,	,,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

४४. फूलन मूठ	पार्वती सो. अडवानी	भेंट
४०. नयी ज्योति	,,	,,

अंग्रेजी पुस्तकें

7.	Saying of Vijaya Dharma Suri	Dr. Krause	0-5-0
16.	An Ideal Monk	A. J. Sunawala	6-4-0
54.	Religious Social Discourses.	Muni Vidya Vijayaji	1-0-0
59.	Monk and Monarch	,,	6-4-0

मुनिराज श्रीविद्याविजयजी के प्रकाशित ग्रन्थ

	नाम	विषय	किस किस भाषा में है
१.	पर्युषणा विचार	धार्मिक	गुजराती
२.	विजयधर्मसूरि चरित्र	चरित्र	गुजराती
३.	जैनशिक्षा दिग्दर्शन	तत्वविज्ञान	गुजराती, हिन्दी
४.	शाणी मुलसा	कथा	गुजराती हिन्दी
५.	प्राचीन श्वेताम्बर अर्वाचीन दिगम्बर	इतिहास	गुजराती
६.	विजयप्रशस्तिसार	इतिहास	हिन्दी
७.	श्रावकाचार	धार्मिक	गुजराती, हिन्दी
८.	तेरापन्थी मतसमीक्षा	तत्वज्ञान	हिन्दी
९.	तेरापन्थी हितशिक्षा	,,	,,
१०.	शिक्षाशतकः पद्य	धार्मिक	,,
११.	ऐतिहासिक सज्झायपाला	इतिहास	गुजराती
१२.	अहिंसा	उपदेश	गुजराती, हिन्दी, मराठी
१३.	आदर्श साधु	चरित्र	हिन्दी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१४.	सूरीश्वर और सम्राट	इतिहास	गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी
१५.	ऐतिहासिक राजसंग्रह भाग ४	,,	गुजराती
१६.	गृहस्थों के गुण	धार्मिक	हिन्दी
१७.	विजयधर्मसूरि अष्टप्रकारी पूजा-पद्य	चरित्र	,,
१८.	शाह के बादशाह	ऐतिहासिक नाटिका	गुजराती, हिंदी
१९.	बाल नाटकी	नाटिका	गुजराती, हिंदी, संस्कृत
२०.	समयने ओलखो भा.१	सामाजिक	गुजराती
२१.	समयने ओलखो भा.२	,,	,,
२१.	नवो प्रकाश	सामाजिक	,,
२३.	प्राचीन लेखसंग्रह	इतिहास	,,
२४.	धर्म प्रवचन	उपदेश	,,
२५.	विजयधर्मसूरि-स्वर्गवास पछी	चरित्र	,,
२६.	विजयधर्मसूरिनां वचन कुसुमो	तत्वज्ञान	गुजराती, हिन्दी, सिंधी अंग्रेजी
२७.	वक्ता कैसे बने ?	पाठ्य-पुस्तक	गुजराती, हिन्दी
२८.	अर्हत्प्रवचन	तत्वज्ञान	प्राकृत, गुजराती
२९.	मेरी मेवाडयात्रा	प्रवास ग्रन्थ	हिन्दी
३०.	विद्याविजयजीनां व्याख्यानो भाग १, २, ३,	उपदेश	गुजराती, अंग्रेजी
३१.	श्री हिमांशुविजयजीना लेखो	इतिहास	हिन्दी, गुजराती सिंधी, उर्दू
३२.	जैनधर्म	तत्वज्ञान	गुजराती, हिन्दी
३३.	मारी सिंधयात्रा	प्रवास ग्रन्थ	गुजराती
३४	मारी कच्छयात्रा	प्रवास ग्रन्थ	,,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

३५.	ईश्वरवाद	तत्वज्ञान	हिन्दी
३६.	शिक्षण और चरित्र निर्माण	निबन्ध	हिन्दी
३७.	नूतन बाल संस्कृत शिक्षका	पाठ्यपुस्तक	संस्कृत, हिन्दी
३८.	इन्दोर व्याख्यानमाला	उपदेश	हिन्दी

अन्य पुस्तकें

१.	पाईअसद्दमहाण्णवः (प्राकृतमहाकोषः)	पं० हरगोविन्द सेठ	७५-०-०
२.	उत्तराध्ययन सूत्रः भा. २ टीकाः	कमलसंयमी श्री जयन्तविजयजी	३-८-०
३.	,, ,,	भाग ३ ,,	३-८-०
४.	,, ,,	भाग ४ ,,	३-८-०
५.	तत्वार्थाधिगम सूत्राणि, भाष्यसहितानि	उमास्वाति	८-०-०
६.	स्याद्वादरत्नाकर भाग १	वादिदेवसूरि	६-०-०
७.	,, ,,	२ ,,	६-०-०
८.	,, ,,	३ ,,	६-०-०
९.	,,	४ ,,	६-०-०
१०.	आबू भाग १	मु० श्री जयन्तविजयजी	१-०-०
११.	जिनवाणीः गुजराती	रा० सुशील	१-०-०
१२.	धर्मदेशनाः गुजराती	आ० श्री विजयधर्मसूरि	१-०-०
१३.	तत्वार्थसूत्र भा० १ विवेचनायुक्तः	पं० सुखलाल जी	१-०-०
14.	An interpretation of Jain Ethics	Do. Krause	0-4-०

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

15. An Kaleidoscepe of Indian wisdom	,,	0-4-0
16. The Heritago of Indian wisdom	,,	0-4-0
१७. सीनेरी सो सखूनो	अदल नसरवानजी खरास	०-१२-०
१८. प्रभुना पंथे	,,	०-१२-०
१९. संत समागम	,,	०-१२-०

प्राप्तिस्थान—
मन्त्री—श्री विजयधर्मसूरिजैनग्रन्थमाला
शिवपुरी (मध्यभारत)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अशासकीय शिक्षण संस्थाएं

भारतवर्ष में जो शिक्षण संस्थाएं चल रही हैं, वे दो विभागों में विभक्त की जा सकती हैं:—शासकीय और अशासकीय। शासकीय संस्थाओं की आर्थिक और व्यवस्था सम्बन्धी सभी प्रकार की जवाबदारी शासन के ऊपर रहती है।

१—अशासकीय संस्थाओं के प्रकार

अशासकीय संस्थाएं दो प्रकार की पाई जाती हैं:—

एक निजी और दूसरी केवल परोपकारार्थ चलने वाली।

निजी संस्थाएं एक या इससे अधिक व्यक्तियों द्वारा केवल पैसा पैदा करने के लिए चलाई जाती हैं। जैसे अन्य व्यवसायों द्वारा गृहस्थ लोग पैसा पैदा करते हैं, इसी प्रकार यह भी उनका एक व्यवसाय है। इसमें अपने कुटुम्ब का पोषण किया जाता है। मकान, जमीन, जायदाद, बढ़ाई जाती है किन्तु वह सब अपने निज के लिये। इसके साथ समाज का या शासन का कोई सम्बन्ध नहीं रहता और विद्यार्थियों के शुल्क तथा अन्य जो भी साधन प्राप्त किये जा सकते हैं, उन पर इसके आय-व्यय का आधार रहता है। किन्तु कहीं कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि ऐसी निजी स्वार्थी संस्थाएं भी जनता से चन्दा एकत्रित करती हैं और शासन से भी सहायता लेती हैं। ऐसा करने के लिये उन्हें अनेक प्रकार का झूठ और प्रपंच भी करना पड़ता है।

दूसरे प्रकार की, जो केवल परोपकारार्थ चलने वाली संस्थाएं होती हैं, उनमें कुछ तो ऐसी होती हैं, जो किसी श्रीमन्त

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ने अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करने के लिये एक बड़ी रकम निकालकर धार्मिक ज्ञान प्रचार, संस्कृति विद्या प्रचार अथवा सार्वजनिक शिक्षण प्रचार के लिये स्थापन की हुई होती है। उसका व्यय उसी रकम में से चलाया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर जैसे शासन से सहायता ली जाती है, वैसे जनता भी ऐसी परोपकारार्थ चलने वाली संस्थाओं को सहायता करती है।

इनमें कुछ ऐसी भी संस्थायें होती हैं, जो किसी समाज की तरफ से, समाज के श्रीमन्तों से चन्दा एकत्रित करके किसी उद्देश्य को लेकर स्थापन की गई होती हैं।

इस प्रकार केवल परोपकारार्थ शिक्षण प्रचार के लिये स्थापन होने वाली संस्थाओं की व्यवस्था वर्तमान युग के नियमानुसार स्थानिक कमेटी, व्यवस्थापक कमेटी, जनरल कमेटी आदि द्वारा होती है। ऐसी संस्था के सिर पर द्रव्य-व्यय की बहुत बड़ी जवाबदारी होने से प्रतिवर्ष के आय-व्यय के हिसाबों को, बाकायदा मान्य ऑडीटर से ऑडिट कराकर और जनरल कमेटी से बहाली लेकर, मेनेजिंग कमेटी द्वारा प्रकाशित करना, अनिवार्य हो जाता है।

ऐसी संस्थाएं प्रायः किसी शिक्षा प्रेमी साधु या गृहस्थों की प्रेरणा और उनकी ऊँची भावनाओं से स्थापित होती हैं। ऐसी संस्थाओं को यदि उसके प्रेरक और स्थापक की सेवा का लाभ निःस्वार्थवृत्ति पूर्वक मिल जाता है, तो वह संस्था 'सोने में सोहागा' बन जाती है। क्योंकि जिन उद्देश्यों और महत्वाकांक्षाओं को लेकर, जिसकी प्रेरणाओं से ऐसी संस्थाएं स्थापन होती हैं, वे स्वयं संस्था के पीछे रही हुई भावना को सफल करने में जितनी दिलचस्पी, प्रेम और ममत्व रख सकते हैं, वैसा दूसरे

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नहीं रख सकते। ऐसी संस्थाओं को शासन भी प्रसन्नतापूर्वक सहायता करता है और करनी ही चाहिये।

इस प्रकार अनेक भव्य उद्देश्यों, भावनाओं और तरीकों से प्रचुर संख्या में सामाजिक शिक्षण संस्थायें स्थापन हुई हैं।

२—शिक्षण के हेतु की सफलता

अब यह बात प्रसिद्ध और सर्वमान्य हो चुकी है कि शासकीय शिक्षण संस्थाओं की अपेक्षा, ऐसी सामाजिक शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा का हेतु अधिक सफल होता है। इसके कई कारण हैं। (१) ऐसी संस्थायें किसी एक या एक से अधिक व्यक्तियों की मनोभावना के विशेष उद्देश्य को लेकर स्थापन होती हैं और इसका संचालन, केवल मशीन की तरह नहीं, किन्तु आवश्यकतानुसार परिवर्तन पूर्वक होता रहता है। (२) इसमें अध्यापकों की पसन्दगी खास विचारपूर्वक की जाती है। (३) ऐसी संस्थाओं में प्रायः छात्रालय अवश्य होते हैं। क्योंकि चरित्र निर्माण के कार्य में छात्रालयों का रखना आवश्यकीय हो जाता है। (४) ऐसी संस्थाओं की व्यवस्था में प्रायः बाधक तत्त्व कम उपस्थित होते हैं। (५) ऐसी संस्थाओं का दैनिक कार्य-क्रम और अन्य वातावरण ऐसा उत्पन्न किया जाता है जिससे शिक्षण और चरित्र निर्माण का हेतु सफल होने में बल मिले। ऐसी संस्थाओं की आर्थिक स्थिति प्रायः कमजोर होने के कारण से, जैसे व्यय मितव्ययिता से किया जाता है, वैसे गरीब और मध्यम स्थिति के लोगों को जितना हो सकता है उतना विद्यादान देने में बहुत कुछ रियायत दी जाती है, जिससे शिक्षण महंगा भी नहीं पड़ता।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भारतवर्ष में कहा जाता है कि जुदे-जुदे राज्यों में शासकीय संस्थाओं की अपेक्षा ऐसी संस्थायें अधिक हैं। मध्यभारत में ऐसी संस्थाओं की संख्या बहुत कम है। परन्तु अब शासन का ध्यान उस तरफ गया है और ऐसी संस्थाओं को प्रोत्साहित भी किया जाता है।

३—अशासकीय संस्थाओं की आर्थिक स्थिति

समाज के दान पर आधार रखकर चलने वाली संस्थायें प्रायः आर्थिक कठिनाइयों का सामना अवश्य करती ही रहती है। संस्था छोटी हो चाहे बड़ी, प्रायः इसका सभी को अनुभव हो रहा है, ऐसा मेरा मानना है। ५० वर्ष से भारत की पैदल-यात्रा करते हुये, शिक्षण क्षेत्र के एक विद्यार्थी की हैसियत से, प्रायः सब जगह संस्थाओं को देखने का तथा उनकी बाह्य और आन्तरिक व्यवस्थाओं को समझने का प्रयत्न करता रहता हूं। उस सारे अनुभव का निष्कर्ष अगर कहूं तो यह है:—

जिस संस्था के लिये किसी व्यक्ति या व्यक्तियों ने लाखों या करोड़ों रुपये अलग रखे हों और उसके व्याज में से संस्था चलाई जाती हो ऐसी, अथवा दयालबाग की तरह एक व्यापारिक दृष्टि से व्यापार द्वारा लाखों रुपये पैदा करना और उसमें से संस्था चलाना, ऐसी संस्थाओं को छोड़कर, जो संस्थाएं केवल समाज के चन्दे पर चलाई जाती हैं, उन संस्थाओं को आर्थिक कठिनाइयों का सामना अवश्य करना पड़ता है। सामान्य संस्थाओं की बात तो दूर रही, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी और विश्व भारती जैसी महान संस्थाओं का वार्षिक घाटा भी किसी दानी श्रीमन्त द्वारा या जनता के द्वारा पूरा किया जाता है। महात्मा गांधी जी का अहमदाबाद का आश्रम, भावनगर का

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन ऐसी ऐसी कई प्रसिद्ध संस्थाएं बिजली की चमत्कार की तरह से अस्त हो गई। अभी भी कई ऐसी बड़ी-बड़ी संस्थाएं हैं, जो अफ्रीका आदि देशों में अपने प्रतिनिधियों को भेजकर, सिनेमा नाटकों के शो लेकर, एवं संस्था के लड़के लड़कियों को नचाकर पैसा एकत्रित कर लेती है और किसी प्रकार अपना वार्षिक व्यय पूरा करती हैं।

इसीलिये दानवृत्ति पर चलने वाली संस्थाओं की आय को मैं आकाशवृत्ति की आय कहता हूँ। समय पर अनुकूल वर्षा गिरने पर, काश्तकार फूला नहीं समाता। किन्तु समय पर पानी नहीं आने से, काश्तकार की जो दशा होती है, वही दशा संस्था और संचालकों की भी कभी कभी होती है। मिल जाते हैं, तब हजारों लाखों मिलते हैं और नहीं आते हैं तो चार छः महीने तंगी भी उठानी पड़ती है। इसीलिये मैं इसको आकाशवृत्ति कहता हूं, लेकिन संस्था के निःस्वार्थी संचालकों को न इससे निराशा होती है, न दुःख। ऐसी कठिनाइयों के साथ जो संस्थायें चलाई जाती हैं, मेरा नम्र मत है कि वे अधिक फलदायक भी होती हैं। क्योंकि संचालक रात दिन इसकी प्रगति के लिये प्रयत्नशील रहता है और उसकी भावना भी भरी रहती है कि. मैं अपनी जिन्दगी पर्यन्त प्रगति ही देखता रहूं। मरने के बाद क्या है "आप मरे सारी डूब गई दुनियां"

४—शासकीय सहायता

ऐसी सामाजिक संस्थाओं को शासन की ओर से सहायता देने के नियम हमेशा से चले आते हैं। समयानुसार इनमें परिवर्तन अवश्य हुआ करता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किन्तु एक समय था, किसी भी सार्वजनिक कार्य में शासन की सहायता लेना बहुत कम लोग पसन्द करते थे। कारण यह था कि सहायता तो कम मिलती थी किन्तु दखलगिरी ज्यादा होती थी। समय में परिवर्तन हो गया। शासन की उदार नीति के कारण अथवा शासन की नीति अपने सिर पर से बोझा कम करने की होने के कारण वर्तमान शासन ने सहायता के जो उदार नियम बनाये हैं वे प्रशंसनीय हैं। शासन यदि इन नियमों के अनुसार ऐसे सामाजिक कार्यों में सहायता करे, तो शिक्षण का क्षेत्र बहुत अच्छा फलदायक हो सकता है। और इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि ऐसी अशासकीय संस्थाओं के द्वारा, शिक्षण प्रचार होने से शिक्षा का हेतु अधिक से अधिक सफल हो सकता है।

किन्तु एक बात अनुभव सिद्ध हो रही है कि नियम तो नियम होते हैं किन्तु नियमों को पालने का आधार मानव-स्वभाव पर रहा है। शासन व्यवस्था करने वाले भी मानव हैं। जिनके अधिकार में, जो कार्य शासन ने रखा हो, उनकी उदारता या कृपणता, उनकी सरलता, या कठोरता उनकी भला करने की मनोवृत्ति या बुरा करने की मनोवृत्ति इन बातों के ऊपर सारा दारमदार है और यही कारण है कि शासन की अपार उदार नीति होते हुये भी कभी कभी विना कारण संस्थाओं को कष्ट उठाना पड़ता है।

बड़े मनुष्य का बड़प्पन सत्ता से प्रतीत नहीं होता है किन्तु उनके हृदय की विशालता, गुणदृष्टि, सहानुभूति और प्रेम से प्रकट होता है।

हमारी संस्था में एक एज्यूकेशन डायरेक्टर महोदय पधारे। उन्होंने संस्थाओं के छोटे-बड़े सभी कार्यों का खूब सूक्ष्मता पूर्वक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

निरीक्षण किया। मेरे पास बैठे और बात-बात पर उन्होंने संस्था की तारीफ की। मैंने कहा "……साहब, हमारी संस्था में कितनी खामियां हैं, कितनी अपूर्णताएं हैं, हमारा कार्य कितना दोष पूर्ण है, यह तो आपने नहीं बताया। आप जैसे महान शिक्षण शास्त्री, विद्वान, अनुभवी, महानुभाव से तो मैं यही आशा रखता हूं कि आप हमारे मार्ग दर्शक बनें, संस्था की न्यूनताएं बतावें, ताकि धीरे-धीरे उन खामियों को दूर करने में हम लोग समर्थ हो सके।" उन्होंने कहा "संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, कुटुम्ब नहीं, समाज नहीं, शासन नहीं कि जिसमें न्यूनता न हो। मैं तो इस संस्था के पीछे आप लोगों की जो भावना है और उन भावनाओं को सफल बनाने का जो आपका प्रयत्न है, उसी को देखकर प्रसन्न होता हूं। आदर्श भावना और आदर्श प्रयत्न न्यूनताओं को अपने आप दूर कर लेंगे।"

कहने का तात्पर्य यह है कि "दृष्टि वैसी सृष्टि।" जिस कार्य को हम जिस दृष्टि से देखेंगे, उसी प्रकार का दृश्य हमारे सामने आवेगा। 'दृष्टि से मेरा मतलब है मनोवृत्ति।' इसीलिये बड़े जवाबदार पदाधिकारियों में उदार दृष्टि की आवश्यकता है और जो वास्तव में बड़े होते हैं, वे प्रायः उदार दृष्टि वाले ही होते हैं। वे किसी का नुकसान करना तो चाहते ही नहीं।

खास करके इस समय में, जब कि सारे संसार में अन्धा-धुन्धी चल रही है, ईर्ष्या, द्वेष का साम्राज्य सर्वत्र फैल रहा है, जरा-जरा से स्वार्थ के लिये मनुष्य कैसे भी अच्छे से अच्छे कार्य को नष्ट करने में नहीं हिचकता, उस अवस्था में जवाबदार व्यक्तिओं को कितनी गम्भीर, मस्तिष्क का संतुलन और विचार शीलता रखने की आवश्यकता है, यह दिखलाने की आवश्यकता नहीं है क्या? जवाबदार व्यक्ति के थोड़े से प्रमाद

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में भयंकर अन्याय और अनर्थ होने के उदाहरण आज संसार में कितने मिल सकते है। हम किसी का भला न कर सके, तो हमारा कम भाग्य किन्तु किसी निर्दोष को नुकसान पहुँचाने का पाप तो हम न करें। यह बात प्रत्येक समझदार व्यक्ति को अपने हृदय में ओत-प्रोत बना लेनी चाहिये। एक साधारण कहावत है 'सौ गुन्हेगार छूट जांय, इसकी हरकत नहीं, किन्तु एक बिना गुन्हेगार हमारे हाथ से दण्डित न हो।" यही सत्ताधारियों का शानपन है, यही उनकी बुद्धिमत्ता है, यही उनका बड़प्पन है।

वर्तमान समय की शासन की सहायता में एक दिक्कत यह भी खड़ी हुई है कि सहायता प्रतिमास नहीं दी जाती। देश की वर्तमान परिस्थिति से कोई अज्ञात नहीं है। व्यापारियों का व्यापार जैसे ठप हुआ है, वैसे उनकी दान वृत्ति भी संकुचित हो गई है। ऐसी अवस्था में तीन-तीन या छः-छः महिनों तक सहायता की रकम का न मिलना, दान वृत्ति पर आधार रखने वाली संस्थाओं को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता होगा—यह सब कोई समज सकते हैं।

शासन को इस समय बहुत कुछ बातों का विचार करना है। आज सारे संसार में प्रत्येक प्रकार की महंगाई सीमा का उल्लघंन कर चुकी है। वह इतनी बढ़ गई है कि आज के ५०) पचास रुपये, पहिले के २०) रु० के बराबर भी नहीं रहे। परिणामतः वेतन,आदि सभी कार्यों का व्यय आशातीत बढ़ गया है। तीसरी बात यह है कि पाश्चात्य देशों का अनुकरण करते हुए, बालकों के शारीरिक विकास के जो साधन पहिले अल्प व्यय, बल्कि बिना व्यय के उपलब्ध होते थे और उसमें अपूर्व विकास होता था, उसके बदले में अत्यन्त व्ययसाध्य साधन बन गये हैं। शासन भी ऐसे साधनों का उपयोग करने के लिये

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

एक अथवा अन्य तरीके पर बाध्य करता है। चौथी बात यह है कि वर्तमान समय में ठोस काम की अपेक्षा कागजी काम इतना बढ़ गया है कि जिसके कारण समय और द्रव्य-व्यय भी काफी हो रहा है।

उपर्युक्त बातों की तरफ़ यदि कोई संस्था उपेक्षा बुद्धि रखती है और अपनी पद्धति के अनुसार, शिक्षण प्रचार के लक्ष्य को पूरा करने में दत्तचित रहती है तो शासनाधिकारियों की अरुची के पात्र भी बनने का भय निरन्तर रहता है। इसलिये इच्छा से किंवा अनिच्छा से, सबके साथ सबको ये कार्य करने पड़ते हैं। एक तरफ जनता का सहयोग कम और व्यय अधिक ऐसी परिस्थिति में सामाजिक शिक्षण संस्थाओं का भविष्य मुझे तो भयजनक मालूम होता है। इसलिये शासन को चाहिये कि उपर्युक्त सारी परिस्थियों पर ध्यान देकर ५०% प्रतिशत सहायता करने के नियम में परिवर्तन कर, अधिक नहीं तो कम से कम ७५% प्रतिशत की सहायता करने का नियम बनाना चाहिये।

संस्थाएं, खास करके ऐसी सामाजिक शिक्षण संस्थाएं कि जो केवल परोपकारार्थ चलती हैं और ज्यादातर गरीब और मध्यम वर्ग के बालकों में शिक्षण प्रचार और चरित्र निर्माण के लिये ही चलाई जाती है, ऐसी संस्थाओं में अध्यापक और पुस्तकादि शिक्षण साधनों के अतिरिक्त अन्य व्यय भी काफी होता है कि जो अनिवार्य होता है। शासन यदि वेतन और एक आध नौकर के व्यय की ही ५०% प्रतिशत देकर के चुप रह जाय, तो संस्था के संचालकों को दूसरे बहुत बड़े व्यय की व्यवस्था करने के लिये, भीख मांगने की आवश्यकता होती है, जो कि आज के समय में एक असाध्य सा प्रयोग रह गया है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसलिये मेरा नम्र निवेदन है कि शासन को अपनी अधिक उदार नीति बनाने की आवश्यकता है। यदि शासन ऐसी संस्थाओं द्वारा शिक्षण के हेतु सफल होने की आशा रखता है तो बेशक, जैसा कि मैं पहिले लिख चुका हूं कि जो संस्थायें निजी हों, स्वार्थी हों, केवल पैसा कमाने के लिये चलाई जाती हों जिनका कोई विधान न हों ऐसी संस्थाओं को शासन की ओर से सहायता न मिले, तो कोई बुरी बात नहीं है। बल्कि मिलनी हो न चाहिये। किन्तु जो संस्थाएं सच्ची हैं, प्रामाणिक हैं, ठोस काम करने वाली हैं, परोपकारार्थ चलती हैं, जिनका विधान वर्तमान समय के नियमानुसार निश्चित हो, ऐसी संस्थाओं को अधिक से अधिक सहायता देकर प्रगतिशील बनाने में पूरा सहयोग देना चाहिये।

आशा है शासन उपर्युक्त सभी परिस्थितियों का अवश्य विचार करेगा।

———

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हिंसा का परिणाम

'दुःख, यह भूल का फल है !' संसार का यह अटल नियम है कि गलती के बिना दुःख कभी नहीं आ सकता। जब मनुष्य के ऊपर दुःख आता है, तब वह दूसरे पर दोष देने का प्रयत्न करता है, किन्तु वह भूल जाता है कि दूसरा तो केवल निमित्त कारण है। दुःख का उपादान तो खुद की भूल है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सभी के यह नियम लागू होता है। देश में भूकम्प आता है, आग का प्रकोप होता है, पानी की बाढ़ें आती हैं, अतिवृष्टि अनावृष्टि दुष्काल पड़ता है, प्लेग, हैजा, 'इन्फ्लुएन्जा' मैनिनजाईटिस, ऐसे ही अन्याय रोगों से हजारों लाखों मनुष्यों की मृत्यु होती है, टिड्डी दलों से आबाद कृषि बरबाद हो जाती है, जानवरों का उपद्रव होता है, इत्यादि अनेक प्रकार के दुख मानवजाति पर आते हैं। उस समय दूसरा कोई उपाय न चले तो, हम या तो ईश्वर के ऊपर उसका आरोप मढ़ते हैं या कुदरत के ऊपर। 'क्या करें ईश्वर की मर्जी है जो देश के ऊपर ऐसी आपत्ति आई !' या यूं कहेंगे, 'क्या करें ? यह तो कुदरत का प्रकोप है !' यही दो ऐसे हैं जो हमारे लाजवाब के लिये जबाबदार बनाये जाते हैं। यदि ये दोनों मुसिबत होते, तो न मालूम मानवजाति अपनी भूल के बदले उनके साथ कैसा कैसा व्यवहार करती ? किन्तु ये दोनों मूर्तिमन्त न होते हुए भी, मानव जाति की भूलों का प्रायश्चित्त उत्तरोत्तर अधिकाधिक जो मिल रहा है, उसका तमाशा अदृश्य में रहकर खूब देख रहे हैं। चाहे जगत कितनी गालियाँ दे, और चाहे घोरातिघोर पापों को करते हुए, उसकी कितनी भी प्रार्थना करें, किन्तु उसको उसका स्पर्श तक नहीं होता।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जो देश अहिंसा की उद्घोषणा करता है, जिस देश में भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध जैसे महापुरुषों ने पशुबाड़ियों का अमृत-रस पिलाया है, जिस देश के ऋषियों ने, 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' का आदेश दिया है, जिस देश के राष्ट्र पिता ने 'जीवो और जीने दो' का अभी ही ताजा सन्देश सुनाया है, जिस देश में 'चिरंजीयात् चिरंजीयात् देशीयं धर्म-रक्षणात्' का नारा हमेशा से लगता आया है, जिस देश में दूसरे के हित के लिये स्वयं का बलिदान कर देने का पाठ पढ़ाया गया है और जिस देश की देवियों ने अपने प्राणों की अपेक्षा सतीत्व को ही महान समझा है, उस देशकी, मानव समाज की आज की दशा का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने वाला क्या यह नहीं कह सकता है कि आज हमारे देश में जो कुछ उपद्रव हो रहे हैं, जो कुछ आपत्ति के बादल छा रहे हैं, वे सब हमारे ही पापों का परिणाम है ? हमारी ही भूलों का नतीजा है ? हमारी हिंसक मनोवृत्तियों का बदला मिल रहा है ? हमारी ही भ्रष्टाचारिता का यह फल है ? हम, भगवान महावीर और बुद्ध, आदि ऋषियों की अहिंसा की दुहाई देते हैं, किन्तु हमारी मनोवृत्तियों में, हमारी वाणी में और हमारे आचरण में कितनी हिंसा भरी हुई है ? इसका कोई विचार करता है क्या ? जहां सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों की हिंसा भी जहां तक हो सके न हो, इतना विचार करने वाली हमारी संस्कृति और कहां बड़े से बड़े और संसार के उपयोगी जीवों का भी संहार करने वाली हमारी मनोवृत्ति ? कहां तो दूसरे के प्राणों की भी आहुति देने की संस्कृति और कहां अपने स्वार्थ के लिये अपने ही समान संसार के अन्य प्राणियों का संहार करने की पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण !

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसका एक ही कारण है और वह यह है कि पुण्य पाप की भावनाओं को हृदय से दूर करना। ईश्वर को जगत का पिता भले ही माना जाता हो, किन्तु अपने स्वार्थ के लिये, अपने सौख्य के लिये ईश्वर के छोटे-छोटे बच्चों का संहार करना यह क्या ईश्वर को और अपनी आत्मा को धोखा देना नहीं है! ईश्वर का अपमान नहीं है? एक ओर 'आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यतियोऽर्जुन; सुखं वा यदि वा दुःख, संयोगी परमोमतः।' यह ईश्वर आज्ञा मानी जाय, और दूसरी ओर से अपने स्वार्थ के लिये जीवों का संहार किया जाय, यह आज्ञा कैसी?

हरिण आदि जङ्गल के जानवरों का, शिकार से संहार किया जाय, और कहा जाय यह कि, 'खेती की हानि करते हैं, इस लिये वे मारे जाते हैं।' परन्तु, मनुष्य यह भूल ही जाता है कि जिन राज्यों में पूर्व समय में शिकार नहीं होता था, उस समय आज की अपेक्षा कई गुनी अधिक फसल उत्पन्न होती थी। आज 'अधिक अन्न उपजाओ' की चिल्लाहट की जाती है, किन्तु उस पाप का परिणाम है कि दिन प्रति दिन अन्न का दुःख बढ़ता ही जाता है और दूसरों को तरफ 'भिक्षां देहि' करके लज्जा जनक हमें हाथ पसारना पड़ता है।

एक राजा ने ३-४ शिकारियों को रख करके शहर के कुत्तों का संहार करने का हुक्म दिया। धर्म के स्थान हैं, हिन्दुओं का मोहल्ला हो, चाहे कोई भी स्थान हो कुत्ता को जहाँ देखो गोली से उडा दो, ऐसी आज्ञा दी। जब कहा गया कि यह तो ठीक नहीं होता, तो जवाब मिला 'कुत्तों के कारण मेरी और प्रजा की निद्रा में भंग आता है।' कितना विचित्र जवाब। सारी प्रजा तो बिचारी इस हिंसा को देख कर रो रही थी और स्वयं राजा शहर से ४ मील दूर एक महल में रहते थे, फिर भी कुत्तों से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

निद्रा में भंग। जब युक्तिवाद में महाराजा साहब लाजवाब बने, तब कहने लगे, 'भले ही मैं नर्क में जाऊं ? नरक में तो जावेंगे या न जावेंगे, ईश्वर जाने, किन्तु क्या ऐसे पापों का प्रायश्चित यह नहीं होगा कि ऐसे ऐसे राजाओं के सिंहासन आज जमीनदोस्त बन गये ? दूसरों को त्रास देकर स्वयं सुख प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले वास्तव में गलत रास्ते पर हैं। मानव अपनी बुद्धि-शक्ति का उपयोग अपने से हीन शक्ति वाले जीवों को सताने और उनका संहार करने में करें, उसका दण्ड राज्य सत्ता भले ही उसे न देती हो, किन्तु कुदरत अवश्य देती है। और कुदरत के शस्त्र वही हैं, जो ऊपर बतलाये हैं। भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुष्काल, रोग, डकैती, अग्निकांड, इत्यादि।

प्राणियों की प्रकृतियों का अभ्यास करने वाले को मालूम हो सकता है कि, जहाँ जिन जीवों की हिंसा अधिक होती है, वहां उन जीवों की उत्पत्ति भी अधिक होती है। खटमल, मच्छर, साँप, बिच्छू, आदि जीवों को जहाँ-जहाँ अधिक मारा जाता है, वहां उसकी उत्पत्ति भी अधिक होती है और उससे मानव-जाति को त्रास भी अधिक होता है। सरकार की ओर से भी जनता के स्वास्थ्य के लिये ऐसे जीवों के मारने की योजनायें की जाती हैं और हजारों लाखों रुपये खर्च भी किये जाते हैं। किन्तु अनुभव यह बताता है कि उन जीवों का संहार करके मानवजाति जितनी सुख प्राप्त करने की इच्छा करती है, उतनी ही उन जीवों की उपद्रव से एवं अन्यान्य निमित्तों अधिकाधिक दुखी होती है। आज सारे देश में कितने रोग फैले, कितना मानव को कष्ट हो रहा है, यह सब किसका परिणाम है ? जहाँ साँप, बिछुओं को नहीं मारते हैं, वहाँ आज सांप बिछू शायद ही कभी देखे जाते हैं और जहाँ मारे जाते हैं, वहां से उनकी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हस्ती कभी नहीं मिटी, बल्कि बढ़ती ही जाती है। जिन घरों में खटमल मारे जाते हैं, उन घरों में उनका उपद्रव चालू ही रहता है। जहाँ नहीं मारे जाते, वहाँ वर्षों में भी कभी देखे नहीं जाते। सांप बिछू और खटमल की ही बात क्यों? बाघ, शेर जैसे भयंकर जानवरों को भी जिन जंगलों में शिकार अधिक होती है, उन जंगलों में उनकी हस्ती कभी नहीं मिटी। बल्कि उनकी उत्पत्ति अधिकाधिक होती है; और उनके द्वारा मानव एवं पशुओं का संहार भी अधिक होता है।

मानवजाति अपनी मृत्यु संख्या कम करने के लिये दूसरे जानवरों का संहार करती है किन्तु दूसरों के संहार से अपने को सुख कभी नहीं मिल सकता, यह बात भी नहीं भूलना चाहिये।

कुछ वर्ष पूर्व की बात है। गजट आफ इण्डिया का एक अंक देखने में आया था। गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया के सेक्रेटरी ने एक वक्तव्य प्रकाशित कराते हुये दिखलाया था कि: —

सन् १९२७ में गवर्नमेंट ने १३९०००रु० जंगली जानवरों का शिकार करने वालों को इनाम में दिये और १२५० रु० सांप मारने वालों को इनाम में दिये। इस प्रकार १४०२५० रु० शिकारियों को इनाम में दिया गया। हर इनाम के परिणाम में २४५०० जंगली जानवरों का और ५९००० सापों का नाश किया गया।' इतने द्रव्य व्यय और इतने जीवों की हिंसा का परिणाम क्या निकला? यह देखिये।

जिस वर्ष में अर्थात् १९२७ में १४०२५० रु० जंगली जानवरों और सांपों को मारने में खर्च किये गये, उसी वर्ष में जंगली जानवर और सांपों के कारण २१३५४ मनुष्य की मृत्यु हुई, जिसमें २२८५ मनुष्य बाघ आदि जंगली जानवरों ने मारे और १९०६६ सांपों के कारण मरे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तारीफ तो इस बात की है कि सन् १९२५ में १९६२ मनुष्य जंगली जानवरों ने खाये और सन १९२६ में १९८५ मनुष्य खाये, जब कि जिस वर्ष में १३९०० रु० खर्च करके जो २५५०० जंगली जानवरों का संहार किया गया उस वर्ष २२८५ मनुष्यों का संहार जंगली जानवरों से हुआ और १९०६६ मनुष्य सांपों द्वारा मारे गये।

जरा सोचने की बात है, प्रतिवर्ष जैसे-जैसे जंगली जानवरों का संहार अधिक किया गया, वैसे-वैसे उन जंगली जानवरों द्वारा मनुष्यों का संहार अधिकाधिक होता गया। जानवरों को मार कर खुद को बचाने के प्रयोग में इससे अधिक निष्फलता और क्या हो सकती है? और यहा आंकड़े 'ब्रिटिश गवर्नमेंट' के जमाने के सरकारी आँकड़े हैं, जिसकी प्रामाणिकता में सन्देह करने का कोई अवकाश नहीं है। यह कोई धार्मिक वृत्ति वाले के मनः कल्पित आकड़े नहीं हैं।

वर्तमान समय में हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है और उसके शासनाधिकारी सभी राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी के अनुयायी कहलाते हैं। हमारा देश जैसे अहिंसा प्रधान है, वैसे हमारा शासनाधिकारी अपना शासन राष्ट्र पिता की आज्ञा अनुसार अहिंसा, सत्य, प्रेम की भक्ति पर खड़ा रखना और चलाने का दावा करते हैं। हमारे शासन का प्रतीक भी अहिंसा प्रचारक महाराजा अशोक का प्रतीक रखा गया है, यह सब कुछ होते हुए, अभी अभी बन्दरों के संहार, मच्छियों का उत्पादन आदि बातें जब सुनी जाती हैं, तो बड़ा आघात पहुँचता है। ईश्वर को माने या न माने, किन्तु कुदरत के नियम सबको मानने पड़ते हैं। और बुरे का नतीजा बुरा और भले का भला, यह भी सभी को स्वीकार करना पड़ता है और यह प्रत्यक्ष भी दिखाई देता है। इस अवस्था में हम लोगों को चाहिये कि हमारी संस्कृति को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सामने रख कर, जीवन व्यवहार बनावें, शासन चलावें, इसके विपरीत जो कुछ होगा, उसका नतीजा उल्टा ही हमें भोगना पड़ा है और भोगना पड़ेगा। हमारे दृश्यों में अहिंसा वृत्ति उत्पन्न करने की जरूरत है। अनिवार्य हिंसा एक चीज है और स्वार्थ वृत्ति के कारण दूसरे जीवों का संहार करना उचित और सुखदायक नहीं है।

हमारे सुख के प्रयोग हमें समुचित रीति से करना चाहिये जिससे हमारी संस्कृति और हमारी अहिंसक वृत्ति में कोई अन्तर न पड़े।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com